→ ❀ उसको ❀ ←

जिसकी केवल स्मृति ही शेष है।

विषय-सूची

रिक्शेवाला

टन....टन टनन....टन....टनन....यह आवाज करती इस नए युग की एक छोटी सी गाड़ी दो पहिए की कलकत्ता की चौड़ी २ सड़कों पर द्रुतगति से भागी चली जा रही थी।

उसमें बैठा था एक तो मोटी तोंद का सेठ, पगड़ी बांधे, अपने पीले-पीले दाँत निकाल कर वह अनावश्यक और अस्वाभाविक खिसियानी हँसी हँस रहा था। दूसरी, एक अधेड़ उम्र की स्त्री थी। वह छरहरे बदन की गोरे रंग की नाटी थी। पावडर- लिपीस्टिक लगाए, साँगोपाँग शृंगार के आभूषण पहने तथा बनावटी हाव भाव दिखाकर वह ढलती जवानी और कुरूपता को छिपाने का निष्फल प्रयास कर रही थी।

इस 'नए युग' की छोटी सी गाड़ी को लोग रिक्शा कहते हैं।

इसमें सबसे बड़ी खूबी यह है कि पशु के स्थान पर मानव जुतता है ....देख कर बड़ा आश्चर्य होगा। आज सभ्यता के युग में, जहाँ मानव प्रगति की उच्च पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ है, वह पशु से भी बदतर-गया गुज़रा-हो गया।

जब मानवता की दुहाई देने वाले राष्ट्र सभ्यता और संस्कृति के लिए तथा, मानव की स्वतन्त्रता के हेतु आज कोरिया में जूझ रहे हैं। और अमेरिका, रूस अब ब्रिटेन भी मानव के अधिकारों, उसकी सुरक्षा एवं विश्व शांति को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए 'एटम् बम्' जैसे ब्रह्म अस्त्र का निर्माण कर रहे हैं।

ऐसे समय में मानव की ऐसी दुर्गति......!

ओह् कितना बड़ा धोखा है! दीपक तले कैसा व्यापक घनीभूत अंधेरा है!!

मानवता का कैसा उपहास हैं!!!

जब एक रिक्शे वाला पृथ्वी और आकाश की झुलसती धूप में नंगे पांव दौड़ता हुआ जाता है...उस समय अपने आप सोलहवीं शताब्दी के अरब गुलामों की याद हो आती है, जो कोड़ों के बल पर मालिक के एक एक इशारे पर नाचा करते थे।....

इनमें और उनमें क्या फरक है? केवल समय का। एक कोड़े के बल पर दौड़ते थे...दूसरे एक रोटी के दाम के बल पर दौड़ते हैं.........

की रक्षा के लिये गगन चुम्बी अलांघ्य घाटियों पर केवल बीस पच्चीस रुपए लेकर कौन लड़ रहा है......देश का नवनिर्माण कौन कर रहा है...किसके बल पर यह देश में औद्योगिक क्रान्ति हुई है...?...शायद वे नहीं जानते.........।

...लेकिन वे यह तो जानते हैं कि देश की आज़ादी में खून किस का बहा। किसके भाई बहनों ने फाँसी के तख्ते की शोभा बढाई। किसके बंधुओं ने अपना सारा अनमोल जीवन जलावतनी में गँवाया ......

...पसीने से लथपथ वस्त्रहीन काली स्याह देह, झुर्रियों से भरा मुख-मण्डल, सूखे सन के समान उलझे हुए रूखे केश, घुटनों तक एक फटी पुरानी कोपीन लपेटे, नंगे पाँव वह रिक्शे वाला इस मई जून की कड़कड़ाती धूप में भागा चला जा रहा था। उसका मुँह बिल्कुल धोंकनी सा बन रहा था। पैरों का सारा लहू मर गया था। वे लकड़ी के समान निर्जीव हो रहे थे।

पल भर के लिये दम लेना वह जैसे जानता ही न था। बस, वह दौड़ा चला जा रहा था। हजारों मील वह दौड़ चुका था और पता नहीं उसे अब कितना और दौड़ना था।

उसकी मुख मुद्रा बड़ी विकृत हो रही थी। बेचैनी, व्यग्रता और विषाद की काली छाया उसके मुख पर खेल रही थी।

ऐसा प्रतीत होता था कि मानों उसकी आत्मा "इन व्याधियों" के प्रभाव से बिल्कुल निस्तेज होती चली जा रही थी।

लेकिन, इसके अतिरिक्त ऐसा भी मालूम पड़ता था, कि एक छोटी सी विद्रोह की चिनगारी उसकी निस्तेज आत्मा में जल रही थी जो किसी समय एक भयंकर ज्वाला-मुखी की भांति फूटकर इन सारी व्याधियों को तथा जीवन की असंगतियों को भस्मीभूत कर देगी...... ..

उसने आज दिन भर में केवल तीन रुपए कमाए हैं जिनमें से दो तो रिक्शे के मालिक की जेब में चले जायेंगे, जिसका कि वह नौकर है और बाकी बचेगा केवल एक रुपया। उसमें उसे अपने बाल बच्चों और अपना पेट भरना पड़ेगा।

चार मील तक वह बेतहाशा दौड़ता है तब उसे कहीं केवल एक अठन्नी मिलती है। कोई भला आदमी तो उसमें भी कमो-बेश कर देता है।.........

...क्या करे...उसका भाग्य ही खोटा है?......

वह अक्सर सोचा करता है!— तो उसे ऐसी जीविका का साधन मिला।

अगर उसका भाग्य —हुआ नहीं होता तो वह गांव से 'इस नरक' में क्यों आता?

—तीन साल तक गांव में पानी नहीं बरसा था। अकाल का दानव सारे गांव में छाया हुआ था। बेचारे असहाय किसान दुर्भिक्ष से हाल-बेहाल होते चले जा रहे थे।

अकाल की विभीषिका उनके सामने मुँह बाए खड़ी थी।

वह घबरा कर अपने बाल-बच्चों को लेकर शहर आ गया।

परन्तु शहर में इस बेकारी के जमाने में नौकरी मिलना दुर्लभ हो गया। उसने गली गली की खाक छानी, लोगों के तलवे सहलाए, टके के आदमियों की खुशामद की, फिर भी काम न बना।

यहां तक कि भूखों मरने की नौबत आ गई। एक दिन तो उकता कर इस जीवन का अन्त करने की ठानली परन्तु बाल-बच्चों को किसके सहारे छोड़े........?

भूख से कलपता हुआ वह रिक्शे के मालिक के घर पहुँच गया। जहां पन्द्रह बीस रिक्शे रखे हुए थे।

"क्या तुम्हें नोकरी चाहिए ?" पास से गुजरते हुए एक रिक्शे वाले ने उसकी बिगड़ी हालत देखकर कहा।

"हाँ।"

'तो [illegible]........'

—[illegible]मुच यह जीवन [illegible]

और उस [illegible]ना। [illegible] वाला बन गया।

"अरे" जरा ज[illegible]र से सारा दम ही निकल गया ? घंटे दो हो [illegible] तुझे खूँ चर खूँ खूँ चर खूँ-करते, घर पहुंचाने का नाम तक नहीं लेता।" खीझ कर सेठजी ने रिक्शे वाले की पीठ पर अपनी बेंत चुभोदी।

उसके तन बदन में आग लग गई।

"...जरा मेरे स्थान पर आकर खड़े तो होइये, सेठजी !

अभी आटे दाल का भाव मालूम पड़ जाय। खाली ऊपर बैठे बक बक करने से क्या? कदम दस चलो तो चीं बोल जाए और सारी सेठाई निकल जाए..." उसने मन ही मन कहा।

......जल्दी चल.........

...जल्दी चल तो रहा हूँ। दो घंटे हो गए हैं मुझे बेदम भागते २ एक क्षण भर के लिये मैं कहीं नहीं सुस्ताया।...गला सूख रहा है भूख से...आंतड़ियें किलबिला रही हैं। और सेठजी ऊपर से धौंस जमा रहे हैं फटकार रहे हैं जल्दी चल... जल्दी चल...अब कैसे जल्दी चलूँ?...... उसने एक दीर्घ निश्वास खींची।

—उसने तेजी से कदम बढ़ाए।

लेकिन अब पैर आगे बढ़ने से साफ इंकार कर रहे थे। एक एक पैर मन मन भर का हो रहा था। [illegible] करे...बेचारे पैर भी? दिन भर भागने से उनका [illegible] तो रहा [illegible]।

सारा शरीर थकान से [illegible] रहा [illegible] भारी भारी हो रहा था। [illegible] पैरों में [illegible] सी आ रही थी। और ऐसा [illegible] था कि [illegible] अभी गिरा.....अभी गिरा...

इसके अतिरिक्त अब राशन भी आधा हो गया छः छटांक की जगह तीन छटांक साफ-सूफ करने पर बच जाता है केवल दो छटांक। क्या एक दिन में एक आदमी को दो छटांक अनाज पर्याप्त होता है? फिर मजदूर के लिए .....।

...यही वह स्वराज्य है जिसके हम स्वप्न देखा करते थे। सोचा था आजादी मिलने के पश्चात जानवर की तरह दौड़ा नहीं करेंगे। हम बेकसों पर मालिकों के अत्याचार नहीं होंगे।

लेकिन——

...बेकारी, मँहगाई, अकाल, दरिद्रता आदि स्वराज के सहचर बन गए। जिनके विकराल पाटों में जनता पिसती जा रही है। जुर्म का खूंख्वार खंजर गरीबों के खून से रंग रहा है...पर...फिर भी हमारा स्वराज 'स्वराज और राम राज्य' है.........

—सचमुच यह जीवन एक बोझा है—जी का जंजाल है......उसने सोचा।

दिन भर का थका माँदा घर पर जाता है वह तो स्त्री नोन, तैल व लकड़ी की रट लगा देती है। बच्चे, चिड़चिड़े मिजाज के, रोने से उसका स्वागत करते हैं। वह खीझ उठता है। कभी २ उन लोगों को पीट बैठता है।

न दिन को चैन न रात को आराम।

और अंततोगत्वा वह कलाली की मधुशाला में शरण पा

लेता है। दिन भर में कमाता था वह उसके भेंट चढ़ा देता है। वह कलाली भी उसको अपने कोमल हाथों से मीठे मीठे वचन कहती हुई मधुरस पिलाती है।

घंटे-आध घंटे बाद वह बिल्कुल उन्मत्त हो जाता है। उसे दीन की चिंता है न दुनियाँ की। वह अपनी धुन में मस्त घर की ओर चल देता है।

'हाय राम!" उसकी स्त्री माथा पीट कर रोने लगती है।

"क्या कहती है, हरामजादी?" और वह उस पर पिल पड़ता है। लात घूँसे, गाली-गलौच.........

......फिर रोना चिल्लाना.........

और घंटे भर बाद में वह बक बक करता भूखा ही खटिया पर पड़ जाता है।

—जीवन की विषमताएं उसे खा रही थीं...सारा संसार उसका मानो दुश्मन है। उसका सब शोषण करके नोचना चाहते हैं। वह दुनियां में इस लिए पैदा हुआ है कि सब उसे

सेठजी ने क्रोधित होकर रिक्शे वाले की पीठ पर एक बेंत की जड़दी।

उसकी थकी हुई टांगे आपस में उलझ गई और वह हड़बड़ा कर फुटपाथ पर मुँह के बल गिर पड़ा।

सेठजी एक कुलाट खा कर सड़क पर गिर पड़े। पर सौभाग्य से उन के चोट कम लगी।

और स्त्री लम्बी चीख मारकर सड़क के बीच में पड़ी। पड़ते ही बेहोश हो गई।

"रे कमीने! मेरी कमर ही तोड़ दी।" सेठजी आग बबूला हो कर उठे।

गिरते ही उसका सिर फट गया। जिसमें से रक्त प्रवाहित हो रहा था। अधिक निर्बल होने के कारण थोड़ी देर बाद में उसका प्राणांत हो गया।

'हरामजादे!" और सेठजी दाँत पीस कर लगे उसके जमाने लात पर लात।

...'वह' अमीरी, जिसने जीवन भर उस बेबस गरीबी को पदाक्राँत किया, चूसा और अपना उल्लू सीधा किया, निष्प्राण पड़ी हुई 'उसी' गरीबी को वह ठोकर मार रही थी......।

प्राणदान

······ओह! आज का समय भी कितना बदल चुका है। कहां वे गौरवशाली राजपूत वंश? जिन्होंने अपने अतुल साहस एवं अदम्य बल से भारतवर्ष के इतिहास का निर्माण किया था।···कहां··कहां वे··?···वे समय के साथ विलीन हो गये अतीत के गर्भ में। अपने साथ राजपूती परम्पराओं के समस्त गुण भी लेगये।······

......और आज के राजपूत सरदार सुरा-सुन्दरी में निमग्न विदेशी शासकों की चाकरी कर रहे हैं। अकबर की कूट नीति इनको अपने डोर-पाश में बांध रही है और वे भी मदांध से अन्धे हुए सियार की भांति शेर की मांद में घुसकर जा रहे हैं। ······और······और······दुर्गा और मीना बाजार, आर-

...सचमुच वे भारत के लाल अपनी कुल देवी का अप-मान कैसे कायर बन कर पी जाते.........

...संस्कृति वापिस पैदा हो सकती है.. अनुकूल राज-नैतिक-आर्थिक वातावरण बना सकते हैं...समाज का नये सिरे से निर्माण कर सकते हैं। परन्तु गई हुई कुल देवी की मान-मर्यादा वापिस लौट कर नहीं आ सकती—लाख प्रयत्न करने पर भी।......

......पर आज......

......मीना बाजार की ओट में सैंकड़ों नारियों को...। उनके सतीत्व पर दिन दहाड़े डाके पड़ रहे हैं। विलासी सम्राट ने भारत-नन्दनी को केवल आमोद-प्रमोद एवं हास-विलास का एक खिलौना मात्र बना रखा है। फिर भी बड़े २ सामन्त शूरमा जबान तक नहीं खोलते...उनका अन्तर क्रोध से जल नहीं उठता। ओह! क्या हो गया है उनको?

—उस दिन जब बीकानेर में सम्राट अकबर का परवाना आया था।

कांप उठे थे जेठजी (महाराज रायसिंहजी) मानो कोई फुंफकारता सर्प हो।

......और था भी.........।

उन्होंने कहा था बड़े क्लांत मन से 'उनसे' (पृथ्वीराज) "तुम वीर हो, चतुर हो और साथ ही साथ विचारशील। इस

लिए मेरा तुम से अनुरोध है कि तुम ही दिल्ली जाओ ताकि अकबर की गिद्ध दृष्टि से बीकानेर का परित्राण हो सके।"

फिर एक लम्बी सांस खींच कर बोले थे वे, "भाई! तुम मानापमान को भूल जाओ। हम वे नहीं, जो पहले थे, जिनका गौरव-गान चारण-भाट गाते हैं। वे दिन लद चुके जब हम भारत के राजनैतिक, सांस्कृतिक जीवन के प्रवर्तक थे। अब हम तो उस मुगल सम्राट रूपी रथ के बैल हैं, जिनका काम है केवल मार-मार कर निश्चित रथ को खींचना। जब तक जीते हैं तब तक इस रथ को खींचना ही पड़ेगा। यदि स्वेच्छा से खींचते हैं तो खाने-पीने को, नहीं तो सत्यानाश की दहकती हुई भट्टी तैयार है।" .....

ठीक नहीं। महाराज की आज्ञा का पालन करना चाहिए।" तो जल उठे थे वे।

बोले—"क्या?"

"दिल्ली चलने का आयोजन......।"

"दिल्ली?...असम्भव...।" बीच में बात काट कर उबल पड़े थे वे, "बैठे-बिठाए अकबर की आधीनता स्वीकार कर लें। अपनी मान मर्यादा अकबर के चरणों में जाकर विसर्जित कर दें...। क्यों......?"

"............"

"हमने हाथों में चूड़ियां नहीं पहिन रखी है। जयचन्द्र का उष्ण लहू हमारी धमनियों में शुष्क नहीं हो गया है। अभी राठौड़ों की तलवारों का पानी उतरा नहीं और न ही भालों की नोंकें कुण्ठित हो गई है। अगर एक बार सारी मुगलवाहिनी हम पर टूट आजाय तो ऐसे दांत खट्टे कर दें कि फिर अकबर को इधर आंख उठाकर देखने का साहस न हो सके।"

"केवल भावुक बनने से कुछ नहीं हो सकता।" कहने लगी मैं, "मन के लड्डुओं को और अधिक मीठा करने के अतिरिक्त आपकी भावुकता और कुछ नहीं कर सकती। मुसलमानों के आतङ्क से आज सारा देश त्रस्त है। उनकी राज्य-लिप्सा एवं ऐश्वर्याकांक्षा हमारी संस्कृति, सभ्यता और वैभव का विनाश कर रही है। आश्चर्य तो यह है कि हमारे ही भाई

परन्तु उनके इन सारे कार्यों में आशातीत योग दे रहे हैं। जब घर का भेदी शत्रुओं की ओर मिल गया तब आप कितनी देर तक लङ्का की रक्षा कर सकेंगे.. ?"

"...तो इसका मतलब यह है कि मैं भी अकबर का दाहिना हाथ बन कर देश का गला घोटूँ......?"

—तब मैं क्या उत्तर देती? मुँह लटकाकर खड़ी रही मैं चुपचाप। ये महाराज के पास गये।

करीब आध घण्टे में अपना सा मुँह लेकर लौट आये। महाराज ने कठोर वचन कहे थे—इनसे।

...और हम चले आये थे—दिल्ली।

"रानी जी!"

"... ...."

—पतिदेव की आज्ञा थी...जिसकी अवज्ञा स्त्री-धर्म के विरुद्ध है। इच्छा न रहने पर भी मैं चल पड़ी मीना बाजार की ओर...लाचारी जो थी......।

—मीना बाजार के बारे में मैं अनेकानेक बातें सुन चुकी थी, लेकिन यथार्थ में आंखों से देखने का वह पहला ही अवसर था।

मैं अपनी ही धुन में पहुँच गई मीना बाजार।

शुक्ल पक्ष की यामिनी समस्त विश्व पर मुस्करा रही थी। विस्तृत नीलाम्बर में नन्हें नन्हें तारे जगमगा रहे थे। कलाधार की स्निग्ध शुभ्र ज्योत्सना में वह मीनाबाजार बड़ा ही नयनाभि-राम लग रहा था। वहां की कृत्रिम सजावट बड़ी ही चित्ता-कर्षक थी।

छोटी २ कई दूकानें सी लगी हुई थीं। ये सब सङ्गमरमर पत्थर की बनी हुई थीं। दीपों के विमल प्रकाश में जगमगा रही थी—वे दूकानें। उनमें क्रय करने के लिये बैठी थीं—भारत की सुन्दरियां।.........शाहजादियां,—रईसजादियां, महारानियां एवं नवाबजादियां—बनाव शृंगार करके नई नवेलियां बन कर बैठी थीं। आभूषणों से लदी हुई, रेशम और जरी के बेश कीमती वस्त्र पहिने, कृत्रिम हाव-भाव दिखाकर कुछ अजीब से नखरे बघार रही थीं।

मणि मुक्ताएं, हीरे के हार, हाथीदांत की चूड़ियां और खिलौने, सुगन्धित तैल, इत्र, शृंगार के सामान इत्यादि कई तरह की वस्तुएं वे बेच रही थीं। अधिकतर विलास एवं शृंगार की वस्तुएं यहां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थीं।...

...और खरीद रही थीं कतिपय शाही महल की शाहजादियां और बेगमें .....।

—भारत की सभ्यता का प्रतीक सम्राट अकबर की महानता का द्योतक और हमारे राष्ट्र के अभ्युदय का सूचक यह था मीना बाजार।......

"[illegible]...!" पुकारा किसी ने।

[illegible] सुन्दर [illegible] और [illegible] में [illegible]

[illegible] है कोई पुकार रहा था।......

[illegible]

खोकर बैठी हैं ये, लेकिन फिर भी झूठा अहं इनमें कितना कूट-कूट कर भरा हुआ है।

इस द्वेष की भावना को मैं स्त्री स्वभाव कहूँ या और कुछ।

इतने में एक स्त्री हाथ भर का घूंघट काढ़े मेरे पास खड़ी हो गई। वह घाघरा पहिने और ओढ़नी ओढ़े हुये थी। उसके चाल-ढाल और हाव-भाव मुझे बनावटी से प्रतीत हुये। वह कम्पनलता से बातें करने लगी। लेकिन उसके स्वर में भी मुझे बनावट का आभास मिला। मैं वहां से चलती बनी।

अब मैं मीना बाजार की सैर करने लगी।

एक दुकान पर कई स्त्रियाँ जमा थीं। वे भाव तोल के साथ परिहास भी कर रही थी-परस्पर।

वहां किसी का भय या शंका तो थी नहीं, इस लिए उनके हँसी-मजाक में अश्लीलता की भी पुट थी। परन्तु एक जगह जमकर मैं ठिठक गई। वहां का दृश्य देख कर मैं भौचक्की रह गई।

वहा कई स्त्रियां चौक पर बैठी मदिरा पान कर रही थीं। वे आती जाती स्त्रियों को भी एक प्याला भर कर मदिरा पिला देती थी। उनमें से कई तो बिल्कुल मद मस्त हो रही थी। नशे से उनकी आँखें पथरा गई थीं। वे वहां पड़ी पड़ी अनर्गल बक रही थीं। उनके शरीर के वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे थे। जिससे वे अर्ध-नग्न सी हो रही थीं।

उनको इस अवस्था में देख कर मुझे बड़ी लज्जा लगी। तत्पश्चात् घृणा से नाक-भौं सिकोड़ती हुई मैं उनको घूरने लगी।

लेकिन............

वे उन्मत्त स्त्रियां परस्पर एक अश्लील गाना गाती हुई परिरम्भ करने लगी .....और एक दूसरे का चुम्बन .....

मैं लज्जा से गड़ गई।

वह स्थान मुझे काटने सा लगा और मैं वहां से दम साध कर भागी।

उत्कृष्ट नमूना !!! काम की मृग-तृष्णा ने इनको क्या से क्या बना दिया।

मेरे दाहिने हाथ को पकड़ कर बोले सम्राट, "किरणमयी ! अपनी मदभरी आंखों से घायल तो कर दिया है मुझे, अब मरहम पट्टी भी करदो ...।" उनके शब्दों में बनावटी याचना थी।

मैं डर सी गई।

कांपते स्वर में कहा मैंने, "सम्राट ..।" लेकिन स्वर गले में अटक गया।

अपने बाहु-पाश में जकड़ते हुए कहने लगे सम्राट, "किरणमयी ! तुमने मेरे हृदय में तहलका मचा दिया है। मैं तड़प रहा हूँ। मेरे बेताब दिल से लगकर जरा शान्ति प्रदान कर दो...।

मैं थर २ कांप रही थी और लड़खड़ा रहे थे मेरे पैर। आंखों में अश्रु-कण छलक आये।

"किरणमयी ! अगर तुम कहोगी तो मैं तुम्हारे लिए अलग एक आलीशान महल चुना दूँगा। हिन्दुस्तान की सारी सल्तनत तुम्हारे कदम चूमेगी, शाही खज़ाना केवल तुम्हारी शृंगार की वस्तुएँ खरीदने के लिए होगा......तुम जिसे चाहोगी उसे लुटा भी सकोगी और मैं हूँगा तुम्हारा गुलाम। केलिगृह में केवल एक प्याला शराब का अपने हाथों पिला देना। ..बस" और वे अपना मुँह.........।

मुझे सारी बातों का भान हुआ।

अब भारत के शाहनशाह मेरे घुटने के नीचे छटपटा रहे थे और मेरी कटार की नोक उनकी छाती का स्पर्श कर रही थी।

सम्राट के देवता कूच कर गये। सारा नशा काफूर होगया, शरीर में कंपकंपी छूट गई। जिन आंखों में नशे की खुमारी नाच रही थी वहां भय अपना तांडव नृत्य करने लगा।

"अब बोल कमीने !" कटार भोंकने के लिए मैंने हाथ उठाया।

"रहम...रहम कर।" कातर स्वर से गिड़गिड़ये सम्राट

"रहम ! पापी !! भारत की ललनाओं को लूटते वक्त तो तेरे हृदय में रहम नहीं पैदा हुआ था...अब रहम की क्यों भीख मांग रहा है ?"

"किरणमयी ! मैं तेरी गाय हूं। चाहे मारदे या जिंदा रख। अकबर तेरी शरण में है।"

अब मैं क्या करती ? धर्म की मर्यादा में बंध चुकी थी।

"लेकिन मेरे समक्ष प्रतिज्ञा कर......।"

"क्या ?"

"कि अब मैं किसी भी भारतीय रमणी की इज्जत आबरू लूटूंगा।"

"........."अकबर ने प्रतिज्ञा की।

"और न आज से मीना बाजार ही लगेगा भविष्य में...।"

सम्राट ने मेरी दोनों बातें कबूल करलीं......।

...और मैंने भी उन्हें प्राण दान दे दिया।......

जीवन बोला।

कुछ देर तक सन्नाटा रहा।

"परस्थितियों का भयंकर...भँवर......जिसमें परिक्रम करता हुआ निर्बल मानव......"

जीवन स्वतः बड़बड़ाया।

"लता।"

"हाँ।"

"एक बात पूछूं।"

"पूछिए।"

"भगवान न करे! अगर मैं दैव योग से जुदा हो जाऊँ तो क्या करो?"

"पहले आप बताएँ। अगर मैं जुदा हो जाऊँ तो......।"

"मैं तो मेरी लता की याद में......।"

"बस २ रहने दीजिए "लता बीच ही में बोली, "तुम कुछ दिन गुजर जाने के बाद एक नव नवेली और ले आओ।"

"मेरा विश्वास तो करो," जीवन के होठों पर मुस्कराहट दौड़ गई।

"कर लिया। बेवफा पुरुषों का क्या विश्वास?"

"अगर तुम्हें प्रतीती नहीं होती तो न सही। लेकिन याद रखना, मौक़ा पड़ने पर खरा उतरूँगा।"

कुछ देर ठहर कर जीवन फिर बोला "अच्छा, तुम

बतलाओ।"

"मैं...," "अति प्रेम से अभिभूत होकर लता जीवन के वक्षःस्थल पर सिर रखकर कहने लगी, "तुम्हारी पावन स्मृति हृदय में छिपाए सदैव तुम्हारा पथ निहारा करूँगी।"

"सच।"

और जीवन यौवन सरिता में लहलाते हुए लता के निष्कपट सौन्दर्य-सरोज को अपलक विभोर सा हुआ देखने लगा।

×　　　×　　　×　　　×

धड़ाक......धड़ाक......। कहीं पास ही आकर दो बम फटे।

जीवन और लता की पैर तले की जमीन खिसक गई।

"शहर में दंगा शुरू हो गया है लता। अब बाहर निकलना असम्भव है।" भयभीत सा हो कर जीवन बोला उसके मुख पर निराशा की कालिमा पुत गई।

दंगा......हिन्दु-मुस्लिम दंगा: धर्म के नाम पर जिहाद। राम और रहीम की दुहाई देने वालों का गृह युद्ध।

पर जीवन की समझ में नहीं आया कि यह दंगा किस लिए?

क्या आज़ादी लेने के लिए......या स्वर्ग की बरबादी करने के लिए?

हिन्दुस्तान का बंटवारा होना निश्चित हो चुका है। एक

हिस्सा कॉंग्रेस को मिल जायगा–दूसरा मुसलमानों को। दोनों में उनकी अलग २ सरकारें बन जाएगी। .....

...तो फिर यह दंगा कैसा?...किस लिए.....?

जीवन ने दौड़ कर खिड़की खोली और बाहर का दृश्य देखने लगा।

सैंकड़ों व्यक्ति हाथों में तलवारें, भाले, चाकू, बंदूकें इत्यादि लिए हुए सड़क पर भागे चले जा रहे थे। आस पास के मकानों में कई व्यक्ति घुस गए।

फिर एकाएक शोरगुल...मारपीट...भयंकर चीत्कारें... स्त्री-बच्चों का आर्तनाद...और फिर मकानों में आग......

धूँ धूँ करके आकाश चुम्बी लपटों को देख कर जीवन सिहर उठा।

"ओह! आज क्रूर धर्म की देहली पर मानवता की हत्या हो रही है," जीवन धीरे से फुसफुसाया।

वह सोचने लगा कि मन्दिरों में स्थापित मूर्तियों की जो पूजा अर्चना करता है तथा पत्थरों की मस्जिदों में कल्पित खुदा को सिर नवाता है...वही इतना निर्दयी। जो एक ओर कल्पित, बेजान आस्तित्व हीन के लिए इतना श्रद्धालु कोमल...और दूसरी ओर जो जानदार प्राणी के लिए इतना हिंस्र...ईर्षालु ...मानव की हत्या करने में हिचकिचाता नहीं।

"ओह! यह धर्म...कितना बड़ा पाखण्ड है...।"

अत्याधिक हो हू सुनकर जीवन ने वापिस खिड़की बंद करली।

लेकिन फिर भी उसके दिमाग में अशांति मची हुई थी। नाना प्रकार के विचार आ रहे थे और जा रहे थे।

...आज लगभग एक हज़ार वर्ष से हिन्दू-मुसलमान साथ २ रहते आ रहे हैं। इन दोनों का रहन-सहन, खान-पान तथा सामाजिक क्रियाओं में काफ़ी समानता है। एकाएक दिखने पर हम हर किसी के लिए निश्चय रूप से 'यह हिन्दू है' या 'मुसलमान है' नहीं कह सकते। खून की परीक्षा करने पर भी दोनों के खून में कोई फ़रक नहीं है......।"

लेकिन.........

...ऊपर से जितनी समानता है, एक पन है, अंदर से इतनी घृणा, द्वेष और असमानता। एक हजार वर्ष से साथ २ मिलकर रहते आ रहे हैं तो भी दूर हैं, बहुत दूर...। एक नदी के दोनों किनारों की भांति। .....

इसका असली कारण है कि हिन्दुओं की आपसी घृणा और स्पृश्यता की भावना ने मुसलमानों को निकट न आने में काफ़ी योग दिया।

मध्यकाल में वाह्य धार्मिकाडम्बरों से परिपूर्ण यह हिन्दू धर्म भारत के शोषितों, पीड़ितों व निम्नवर्गीय लोगों को आत्मसात करने में असमर्थ हो गया था तो फिर विदेशी मुसलमानों

को, जो उनकी दृष्टि में म्लेच्छ थे, गले लगाते भी कैसे।

घृणा से तो घृणा उत्पन्न होती है। बबूल का वृक्ष लगा कर अगर आम चाहें तो निरी मूर्खता है। बबूल में कांटे लगेंगे और वे एक दिन हमारे जिगर को छेद देंगे। अंत में यही हुआ आज का संहारात्मक नरमेध 'उस घृणा' का कड़ुवा फल है...

इतने में, घर के दरवाजें पर कई लोगों की कंठ ध्वनि सुनाई पड़ी। वे लोग 'अल्लाहो अकबर' के नारे लगाते हुए दरवाजा तोड़ने लगे।

"नाथ !" चिल्लाती हुई लता, मोहन को गोद में लेकर जीवन की ओर भागी।

जीवन ने परिस्थिति समझी।

पहले तो वह घबरा गया। परन्तु फिर साहस करके पूर्वत खड़ा रहा लता को छाती से चिपकाए।

आन की आन में दरवाजा टूट कर गिर पड़ा। एक साथ बीसेक आदमी अंदर घुस आए।

किसी अज्ञात शक्ति से प्रेरित होकर कहा जीवन ने, "क्या चाहते हो ?" उसके स्वर में वज्र सी कठोरता थी।

सुनकर उपद्रवी सन्नाटे में आ गए। किसी भी हिन्दू की उनके सामने बोलने की हिम्मत नहीं हुई और यह क़ाफिर सीना तानकर ललकार रहा है।

' हम तेरे घर की सारी दौलत वगैरह जो कुछ है सब

चाहते हैं।" उनमें से एक गला फाड़ कर चिल्लाया।

"...और तेरी बीवी भी...।" दूसरा बोला।

"खबरदार! मेरे जीते जी इस स्त्री को कोई हाथ न लगाय। अगर किसी ने ऐसा दुस्साहस किया तो मेरी और उसकी जान एक कर दूँगा।" जीवन बोला दृढ़ता पूर्वक।

"अच्छा! इतना घमंड...। पकड़ो पहले इस काफ़िर को और यहीं हलाल करदो।"

कहने की देर थी। सारे व्यक्ति जीवन की ओर बढ़ गए। एक ने तान कर भाला उसके सिर पर दे मारा। कहराता हुआ वह भूमिसात् हो गया। फिर सारे के सारे उस पर पिल पड़े।

लता 'नाथ' कहती हुई भागी जीवन की ओर पर एक मुसलमान ने उसकी कलाई पकड़ली।

"अब तो वह मर चुका है फालतू उसके क़रीब जाकर अपनी जान खोओगी।" यह कहता हुआ वह हीः हीः करके हँसने लगा।

"माँ . माँ...!" मोहन चिल्लाया।

लता का ध्यान उस ओर गया।

एक मुसलमान मोहन को अपने भाले में टांगे अट्टहास करके हँस रहा था। भाला मोहन के आर पार निकल गया था।

"मोहन!" लता चिल्लाई और बेहोश होकर गिर पड़ी।

\+ × + ×

"लता......!"

"अशोक बाबू! मुझे माफ़ कर दो...!" अपने दोनों हाथों से मुँह ढांपकर लता रोने लगी।

अशोक हैरान।

लता के इस बर्ताव को देख कर वह दंग रह गया। उसे स्वप्न में भी ख्याल न था कि वह उसके शादी के प्रस्ताव को इस प्रकार बिल्कुल ही अस्वीकृत कर देगी। लता के बोल-चाल, रहन-सहन और व्यवहार में उसे यही प्रतीत होता था कि वह और लता काफी नजदीक २ हैं।......

आज से छः महीने पहले अशोक की लता से मुलाकात हुई थी, जब वह इस शरणार्थी शिविर में पाकिस्तान से आई थी। उस समय इसकी सूरत देख कर रोना आता था। मुरझाया हुआ चेहरा बिल्कुल पीला जर्द हो रहा था। शरीर सूख कर कांटा बन गया था। अस्थि-पिंजर पर मांस पेशियों का मानों नामों-निशान न था। आंखें गड्ढे में धंस गई थी। कपोलों पर काले-पीले धब्बे पड़ गए थे। सिर के केश सन के समान हुए उसकी करुण कथा स्वयं ही सुना रहे थे।

अशोक के दिल पर एक क़रारी ठेस लगी।

लेकिन फिर भी न मालूम क्यों वह लता की ओर आकर्षित हुआ। उसने लता की बातें जाननी चाही।

लेकिन उसके चंद दिलासा पूर्ण शब्दों ने लता के आतुर

हृदय पर नमक छिड़कने का काम किया और उसकी आत्म-व्यथा विकल दृगों में से बहने लगी।

अपना जी कड़ा करके वह लता को धीरज बँधाने लगा, "रोओ ना लता। रोने से दिल कच्चा होता है। अगर अभी से दिल कच्चा हो गया तो फिर जिंदगी के लम्बे सफर को हम कैसे तय करेंगे। सुख और दुख की धूप-छाँह तो सदैव जीवन में आती रहती है, इनसे घबराना मूर्खता है। अगर आज जीवन पथ पर डरावनी काली छाया की चादर तनी हुई है तो निकट भविष्य में ऐसी कड़कड़ाती धूप चमकेगी कि इस काली चादर को फाड़कर जीवन में आनन्द की सरिता प्रवाहित कर देगी।... हिम्मत रखो...हिम्मते मर्दां ..मददे खुदा।"

अशोक के शब्दों में मधुरता थी, अपनापन था और था दृढ़-विश्वास। इसके अतिरिक्त खण्डित जीवन की इमारत में से ईंट-पत्थर निकाल कर नए जीवन की इमारत का निर्माण करने का था उत्कट उत्साह।

लता की आँखों के आंसू सूख गए।...

शिविर का उचित परिचय, वहां के शांत-सुखद वातावरण और भरपूर आराम की वजह से लता का रूप-लावण्य फिर वापिस दूना निखर आया। पतझड़ से उजड़ा हुआ उपवन नूतन सौन्दर्य से परिवेष्ठित होकर खिल उठा। उसमें नई बहार आगई।

अशोक का मन झूम उठा खुशी से।

"लेकिन अभी प्रेम की आग एक तरफ़ सुलग रही है" उसने सोचा, "दूसरी ओर अभी ठंडक है।"

एक रोज़ उसे बड़े ज़ोर का ज्वर चढ़ा। सिर तो मानों फटा जा रहा था। उसका कराहना सुनकर लता आई और झट उसका सिर अपनी गोद में रखकर दबाने लगी। ज्वर का आतंक कई दिनों तक रहा। लता ने इन दिनों में उसकी ऐसी श्रद्धा-पूर्वक, लगन और निस्वार्थ भाव से सेवा की, वह जल्दी ही भला चंगा हो गया। अब अशोक को पूर्ण विश्वास हो गया कि आग की लपटों ने लता के अंतस्तल को भी जलाना आरम्भ कर दिया।........

इसलिए उसने आज यही सोच कर लता से शादी का प्रस्ताव किया।

पर लता ने अवहेलना करदी। वह अपना सा मुँह लेकर चला गया।

अब लता का रोना थम चुका था। वह धीरे २ सुबकिएं ले रही थी।

पता नहीं किस मनहूस घड़ी में अशोक की उससे मुलाकात हुई थी। वह उसको एक मित्र के अतिरिक्त कुछ नहीं समझती। उसके सहयोग से उसे लाभ अवश्य हुआ है। वह उसकी उदारता, सहयोग और कृपा के लिए कृतज्ञ है।

अब उसके मानस पटल पर जीवन की वीर मूर्ति अंकित

हो गई उसके वे शब्द "मेरे जीते जी......" कानों में गूंजने लगे। वह स्वाभीमानी धराशाही हुआ, किन्तु उसके फुंफकारते हुए पुरुषत्व ने उसका सिर सदा के लिए ऊँचा कर दिया।

परन्तु मोहन की रोमांचित चीत्कार की याद आते ही लता कांप उठी। उसके शरीर में पसीना सा छूट गया।

किसी ने 'बेटी' कहते हुए पीछे से कंधा छुआ।

लता ने मुड़कर देखा, एक गम्भीर मुद्रा धारण किए 'बुढिया' खड़ी है। यह वही बुढिया थी, जिसके आंचल में मुंह छिपाने से उसे काफी राहत मिलती है। जिसका स्नेह का एक शब्द 'बेटी' सुनकर वह निहाल हो जाती है। इस शरणार्थी शिविर में उस दुखियारी का केवल यह बुढिया ही सहारा है, जो उसके दुःखों पर वात्सल्य रस का अमृत बरसाया करती है।

लताने उस स्नेहमयी बुढिया की छाती पर अपना सिर रख दिया। उसका दारुण रुदन सुनकर बुढिया का करुण-कलित हृदय पसीज गया।

उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा बुढिया ने, "मैं सब कुछ जानती हूँ बेटी! तू जिस समस्या में उलझ गई है, वह वास्तव में बड़ी पेचीदी है। लेकिन ठंडे दिमाग से उस पर विचार करो, शायद कोई हल निकल आय। किसी भी समस्या का हल होना नहीं है।"

बुढ़िया की छाती पर सिर रखने से लता को बड़ा सुख मिल रहा था।

"अगर तुम्हें अशोक की ओर से कोई शंका है," बुढ़िया फिर कहने लगी, "तो मैं विश्वास दिला कर कहती हूँ कि वह एक शरीफ लड़का है। वह साल भर से इस शिविर में रह रहा है, लेकिन उसके कार्य में ऐसी कोई बुराई नहीं, जो उसके निर्मल चरित्र पर किसी प्रकार का लांछन लगाए। ऐसे युवक का दामन थामना कोई बुरा नहीं।"

"माँ! यह तुम क्या कह रही हो? एक हिन्दु महिला के लिए दूसरी शादी की बात करना एक महान पाप है।" लता का स्वर भरी गया।

"बेटी!" ओज पूर्ण स्वर में बोली बुढ़िया, "हिन्दु महिला.. हूँ...। तुम अपने आपको हिन्दु समाज की महिला कहने में गौरव अनुभव करती हो। जो तुम से घृणा करता है। तुमको अपनी बहू-बेटी बनाने से लजाता है, अपनाने से हिच-किचाता है। उसकी दृष्टि में तुम एक पतिता, कलंकनी और व्यभिचारिणी हो। अगर पाकिस्तानी गुण्डों ने तुमको लूटा तो इसके लिए तुम अपराधी हो, वह समाज नहीं।...तुम भूल जाओ, बेटी! हिन्दु समाज की दुहाई देना। उसमें निर्बलों का स्थान किंचित मात्र भी नहीं। अगर आज उस समाज के नौजवान 'इन' अपहृत महिलाओं का हाथ पकड़ते तो वे देश

के चकलों की शोभा न बढ़ाती और न पैसों पर अपना शरीर बेचती।...अब तुम्हारा समाज उजड़े हुए-लुटे हुए, ये बेघर-बार के लोग हैं। इन्हीं से तुम्हें सच्चा सहारा मिलेगा।"

बुढ़िया ने कुछ देर तक खांसा फिर कहने लगी, "...सरकार हमें सदा रोटी कपड़ा थोड़ी ही देगी। वह हमें किसी न किसी दिन जवाब तो देगी ही। उस समय तुम्हारे सामने जीविका का कौनसा रास्ता होगा। तुम पढ़ी लिखी नहीं, न ही कुछ हुनर जानती हो, जो चार पैसे कमा सको। बेटी! सचमुच हम जैसी भारतीय स्त्रियों को पुरुष का अवलम्ब अनिवार्य है। हमारा जीवन उस दिशा हीन-मंझधार में फंसी हुई किश्ती की नाईं गतिहीन है जिसको चलाने के लिए एक कुशल नाविक न हो। जिद न करो। कहा मानलो। अशोक को जीवन-साथी बनाकर जीवन का सच्चा सुख लूटो। वक्त देखकर काम करने में बुद्धिमानी है।"

"माँ मुझ से यह न हो सकेगा।" लता रोने लगी कातर बन कर।

बुढ़िया कुछ खिन्न होगई, "... तो फिर गली २ की ठोकर खाकर अपने इस अनमोल जीवन को निकृष्ट बना दोगी। पहले पहल सभी यही करती हैं और मुसीबतों से हाथ धो बैठती हैं। परन्तु बाद में या तो आत्म-हत्या कर लेती हैं या किसी के धोखे में आकर नरक में कूद पड़ती हैं।"

"माँ ....!"

"मैं जो कुछ कह रही हूँ सच कह रही हूँ। कहा मानलो। मेरी अच्छी बेटी।"

"मा.........!" लता फूट २ कर रोने लगी।

"मानलो बेटी कहा।"

"अ.......च्.... ..छा . ...।"

\+ + + +

हृदय भी बड़ा विलक्षण होता है। जहां उसमें मोह और प्रेम भी है वहां उसमें घृणा और जल्दी ही भुला देने वाली भावना भी प्रचुर मात्रा में है। इस प्रकार से उसमें दो विपरीत बातों का एक अजीब और निराला सम्मिश्रण है।

जब तक लता गुण्डों के चंगुल में रही, उसे रह २ कर जीवन और मोहन की याद सताया करती। उनकी तस्वीरें उसकी आँखों के आगे घूमा करतीं।

लेकिन अब वह उनको भूल गई।

—जीवन और मोहन नाम के दो व्यक्ति उसके जीवन-मंच पर आए थे—वह सिर्फ इतना ही जानती है।

अब उसका जीवन भौतिक सुखों से परिपूर्ण है। शहर के प्रतिष्ठित स्त्री समाज में उसका काफी मान है। और अशोक तो उसे सदैव दिल में बैठाए रहता है।

साँझ थी। शहर के सारे व्यक्ति बाग़-बगीचों में घूमने के

निकल पड़े। लता भी अपने दो साल के बच्चे को गोदी में उठाए बाग की ओर चल पड़ी।

बाग में वह हरी २ दूब पर बैठ गई और एक अध बुना स्वेटर बुनने लगी।

बालक दूबमें खेलने-कूदने लगा।

थोड़ी देर बाद में बालक जोर से चिल्लाता हुआ लता से चिपट गया।

वह घबरा गई। सामने एक भिखमंगा फटे-पुराने कपड़े पहने दयनीय अवस्था में खड़ा था। उसके सिर व दाढ़ी के बाल बुरी तरह बढ़ रहे थे।

वह करुणा का पात्र लता का कोप भाजन बना। वह तिलमिला कर बोली "शैतान! कौन है तू मेरे बच्चे को डराने वाला।"

पर भिखारी की आँखों से उसकी आँखें मिलते ही वह अपने आप चुप हो गई। मानों उसकी जबान पर ताला ठुक गया। वह भ्रांति-चित सी हुई भिखारी को आँखें फाड़ २ कर निहारने लगी।

"इसे मैंने कहीं देखा है।" यह विचार उसके दिल में उठा।

"...पर कहां?" उसका मस्तिष्क शून्य प्रायः सा हो गया। अनेकानेक विचार उसके दिमाग में उमड़ने लगे और वह अधीर सी होकर कुछ याद करने लगी। पर सब निष्फल।

भिखारी चला गया।

लता के दिल पर अज्ञात रूप से एक कसक सी उत्पन्न हो गई। भिखारी के साथ आज का उसका व्यवहार अच्छा न लगा और वह परिताप में जलने लगी।

"भिखारी···बेचारा दीन-हीन! मैंने क्यों उसको गाली दी? वह बच्चे को डराने थोड़ी आया था। पैसे मांगने आया था। मैंने बिना समझे-बूझे उसे यूँही दुत्कार दिया। उसके पीड़ित आक्रांत हृदय को व्यर्थ में चोट पहुँचाई। मुझे उससे क्षमा याचना करनी चाहिए। पर वह क्षमा करेगा भी या नहीं..।"

लेकिन उसके हृदय के कोने से एक दूसरी आवाज़ आई, "···उसकी आँखों से कितनी करुणा टपक रही थी! उसमें आत्मीयता का भाव भी झलक रहा था तभी तो मेरे बड़बड़ाते मुँह में दही जम गया। उसकी आँखें जानी-पहचानी मालूम पड़ती हैं। पर···पर···याद नहीं आता।"

भिखारी से मिलने का उसका औत्सुक्य अज्ञात रूप से बढ़ गया।

उसने भिखारी को ढूँढने के लिए सम्पूर्ण बाग का चक्कर लगाया। पर वह मिला नहीं।

घर पर भी वह उद्विग्न रहने लगी। उसके अवचेतन मन पर भय का आतंक छा गया। उसकी आँखों में भिखारी की मर्मांतक आँखें नाचा करतीं। वह दिन भर गूँगी सी एक जगह

पर बैठी रहती। न तो किसी काम में जी लगता और न खाने पीने में। रात्रि में उसे नींद नहीं आती। अगर थोड़ी देर आँखें लग भी जाती तो चौंक कर उठ बैठती। अगर दरवाजे पर किसी के आने की आहट मिलती तो वह भागी जाती। ज्यों २ दिन गुजरते जा रहे थे, त्यों २ उसकी भिखारी को देखने की इच्छा प्रबल हो रही थी।

"लीजिए, बहूजी! अपना खत।" एक दिन मेहरी ने उसे लिफाफा लाकर दिया।

उसने एक अनमनी सी हल्की दृष्टि खत पर डाली और खोलकर पढ़ने लगी

"लता...!" शब्द पढ़ते ही वह चौंक पड़ी जैसे किसी पूर्व परिचित व्यक्ति ने पुकारा हो। उसका हृदय पता नहीं क्यों धक् २ करने लगा।

खत इस प्रकार था:—

'लता!

आज मैं 'प्रिय' लिखकर तुम्हें सम्बोधित नहीं कर रहा हूँ। क्योंकि मैं ऐसा लिखने से वंचित हूं।

जिसको तुम मरा हुआ समझे बैठी हो, वह अभी तक [illegible] से जिन्दा है। मौत की विभीषिका से किसी न किसी तरह बचकर मैंने तुम्हारा पता आज तक अनुसंधान किया। दर दर की ठोकरें खाईं। हिन्दुस्तान के सारे शहरों की खाक

छानी। मेरा सारा जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। फिर भी तुम्हें खोजता रहा। पता नहीं कौनसी आशा तुम्हें खोजने के लिए प्रेरित कर रही थी। मुझे पूर्ण विश्वास था कि तुम अभी ज़िंदा हो और कहीं बैठी मेरा इंतजार कर रही हो।

जीवन में ऐसे भी मौके आए थे, जिससे जीवन की वर्तमान धारा बदल सकती थी। भग्नावशेषों पर मैं एक नवीन भवन का निर्माण कर सकता था। किन्तु ऐसा किया नहीं। क्यों कि तुम्हें पाने का विश्वास .....! इसके अतिरिक्त मैंने वायदा भी किया था......।

मैंने तुम्हें खोज निकाला। पर पाया दूसरे रूप में। अब तुम मेरी लता नहीं, बल्कि किसी और की हो। मेरी मोहब्बत की दुनियाँ उजड़ गई। जब उसकी रानी पराई हो गई तो वह कायम भी कैसे रह सकती है।

जाने दो इन बातों को ...।...

मैं अब जा रहा हूँ सदा के लिए। जिस विश्वास पर तुम्हें ढूंढ रहा था वह चकनाचूर हो गया। अब इस निराश, नष्ट प्रायः जीवन के बोझ को यह भग्न हृदय उठाने में मजबूर है।...

"जीवन"

लता की आँखों में काली-पीली छायाएँ नाचने लगी। हृदय मानों बैठ सा गया। माथा चकराने लगा।

जिस आहत दिल पर राख पड़ गई थी, वह अब दूर हो

गई और वह तड़पने लगी।

"मेरे प्राण नाथ!" लता चिल्लाई और उस पर एक भयानक उन्माद छा गया।

दरवाजे के बीच में उसे 'खिलारी' खड़ा दिखाई दिया और वह पागल की तरह भागी। लेकिन ठोकर खाकर सीढ़ियों पर लुढ़कने लगी।

दो भाई

★★★★
★ वे ★ दोनों भाई थे।
दोनों की अवस्था लगभग दो दो वर्ष की थी।
उनकी माता थी शारदा।

उनको संवारना व सजाना ही उसका काम था।

उनकी सेवा टहल में ही उसका सारा दिन व्यतीत हो जाता था।

विक्टर ने उसका सारा सुख एवं ऐश्वर्य छीन लिया था। उसके माथे का सिंदूर उसने सदा के लिए पोंछ दिया था। वैधव्य की काली छाया उसके जीवन पथ पर छाई हुई थी। उसके लिए चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा था।

लेकिन आशा के चीण प्रकाश से उसका कुण्ठित हृदय सदा आलोकित रहता था। वह आशा का प्रकाश उसे मिल रहा था अपने इन दोनो बच्चों से। जो अब उसके जीवनाधार थे उसकी टूटी-फूटी जीवन नैया के खेवनहार थे और थे उसके उजड़े हुए उपवन के वसंत।

वे दोनों भाई घर के आंगन में नाना प्रकार की क्रीड़ाएं किया करते थे। उन का मचलना और किलकारना देख कर

दुःखिनी अकिंचन माता के हृदय में मंदाकिनी लहराने लगती थी।

कभी २ तो वह स्वयं ताली देकर नाच उठती थी और आत्मविभोर होकर गाने लगती थी "जुग जुग जीओ मोरी चांद सूरज की जोड़ी।"

नाम थे दोनों के राम और रहीम।

(२)

समय बीतता गया। राम और रहीम ने चौदहवें वर्ष में कदम रखे। शारदा के जीवन में अब बहार ही बहार है। सुख सरिता में वह निर्विघ्न तैर रही है। वह अपना दुःख दारिद्र्य बहुत कुछ भूल चुकी है। अब वह अधिक तर रोती नहीं बल्कि गाती है! लड़कों को पूर्वजों की गौरव गाथा सुनाया करती है। अतीत के वैभव का सुन्दर शब्द चित्र उनके सामने वह प्रस्तुत करती है। बड़े शांति पूर्वक व्यतीत हो रहे हैं उसके ये सुनहरे दिन।

परन्तु 'सब दिन जात न एक समान' और उसके जीवन में आग लगाने के लिए एक दिन वही विक्टर, जिसने उसकी सारी [illegible]—लूट ली थी, गले में एक छल्ला तक न छोड़ा था, उसके पास फिर आया।

शराब के नशे में झूमता हुआ विक्टर बोला "शारदा, मुझे रुपये दो।"

"रुपये कहां से लाऊँ।"

"मैं कुछ नहीं जानता। मुझे रुपये चाहिए।"

"विक्टर! क्यों मेरी जान खाने पर तुला है। मेरा सब कुछ छीनने पर भी तेरी लालसा पूर्ण नहीं हुई। मेरे जीवन को बरबाद करके भी तेरा कलेजा ठण्डा नहीं हुआ। तूने मुझे मिट्टी में मिला दिया कहीं का न रखा। अब क्यों तड़पा तड़पा के मारता है? क्यों नहीं छुरी से गला काट लेता, ताकि सारी झञ्झट ही मिट जाय?" शारदा की आँखें चमकने लगीं।

"शारदा।" विक्टर आंखें निकाल कर बोला।

" .... वे दिन भूल गये विक्टर, जब तुम भिखमंगे की तरह मेरे द्वार पर आये थे। माथा रगड़ कर तुमने आश्रय देने के लिए मेरे पति से अनुनय-विनय की थी। मेरे सरल सहृदय पति ने तेरी बिगड़ी दशा को देख कर आश्रय दिया था, तुझे मेरे घर में। परन्तु आस्तीन का सांप बन कर तूने मेरे पति को डस लिया। मेरे घर की समस्त पूंजी को चुरा कर तूने शराब कबाब में उड़ादी और फिर मेरे पर भी अत्याचार करने से तू नहीं चूका। मैंने तुझे सदा सगे देवर से कम नहीं समझा लेकिन तू.........।"

शारदा के होठ फड़क उठे, मुख रक्तवर्ण हो गया।

"अच्छा सुन लिया तेरा लेक्चर," विक्टर ने कहा "अब सीधे हाथ से रुपये निकाल दे, नहीं तो सारी शेखी किरकिरी कर दूंगा।"

शारदा क्रोध का घूंट पीती हुई पूर्ववत चुपचाप खड़ी रही।

"अब समझा, लातों का देव बातों से थोड़े ही मानेगा।"

विक्टर ने शारदा का झोंटा पकड़ कर घसीटना आरम्भ किया।

शारदा दारुण-चीत्कार कर उठी।

"अब बोल!" विक्टर आंखें निकाल कर चिल्लाया, "पैसे देगी या......।"

इतने में किसी ने उसके सिर में पत्थर दे मारा।

वह शारदा का झोंटा छोड़ कर पीछे मुड़ा।

राम और रहीम हाथों में बड़े २ पत्थर लिए खड़े थे। उनकी आंखों से शोले बरस रहे थे।

"तू कौन है शैतान मेरी मां का झोंटा खींचने वाला?" राम ने विक्टर की ओर पत्थर तान कर कहा।

"लेकिन वह तो तुमको मारता था।"

विक्टर दूर खड़ा २ दाँत किटकिटा रहा था; जैसे वह उन दोनों को कच्चा ही चबा जाने को उद्यत हो।

"शारदा याद रखना," विक्टर ने कहा, "मेरे अपमान का मूल्य बड़े महंगे दामों चुकाना पड़ेगा।"

"चल कुत्ते।" रहीम ने दूसरा पत्थर उठाया। परन्तु शारदा ने उसका हाथ पकड़ लिया।

विक्टर ने अत्यंत क्रुद्ध होकर अपने दाहिनेहाथ की मुट्टी बांए हाथ पर पटकी और वहां से चलता बना।

(३)

समय ने पलटा खाया, साथ ही साथ शारदा की किस्मत ने भी करवट बदली।

शारदा का मनोरम जीवन पथ कंटकाकीर्ण हो गया। उसके जीवन का आनन्द-भानु ढलता सा नजर आने लगा। उसकी छोटी सी गृहस्थी में भी गृह-कलह के अंकुर उत्पन्न हो गये और इसलिए किसी अज्ञात अनिष्ट कारक आशंका से उसका कोमल हृदय सदा उद्विग्न रहने लगा।

राम जितना धीर और था, रहीम उतना ही उद्दंड। राम जितना विचार शील था रहीम उतना ही अविवेक शील। राम जितना दूरदर्शी था रहीम उतना ही अदूरदर्शी।

राम पका कर खाने वाला था; रहीम पकी पकाई मिलने

की टोह में रहता था। इसलिए उसने अपना गुरु विक्टर जैसे अपने ही चिर दुश्मन को बनाया।

विक्टर उन व्यक्तियों में से था जो चोर से कहता चोरी कर और साहूकार से कहता जागता रह।

राम ने अपनी विद्या-बुद्धि एवं सज्जनता से सब कुछ अर्जन कर लिया था। सब लोग उसकी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा किया करते थे। शारदा के घरका वह संचालक था। उसकी स्त्री थी एक तरह से घर की मालकिन।

यह सब देख कर विक्टर की छाती पर सांप लोटने लगा। वह नहीं चाहता था कि शारदा के घरकी इस प्रकार उन्नति हो। लोग राम की बड़ाई करें। इसलिए उसने दोनों भाइयों में फूट डालने का प्रयत्न किया। और इसके लिए रहीम ही उसे उपयुक्त जँचा।

रखता है। ...तेरा भी पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार है। कानून से आधी सम्पति का मालिक तू भी है। अपनी सम्पत्ति क्यों नहीं लेता।"

निशाना बिलकुल ठीक बैठा।

उधर उसने राम को भी सावधान कर दिया, 'भैया! जरा रहीम से बचकर रहना, वह आजकल बहकी २ बातें करता है। फिर यह न कहना कि विक्टर ने कुछ कहा नहीं था।"

पर बुद्धिवादी राम उसके चक्कर में आया नहीं। उसने विक्टर को फटकार बतलाई, "हमारे घरेलू मामले में तुम बोलने वाले कौन होते हो जी? अपना रास्ता नापो। मुझे अक्ल देने की आवश्यकता नहीं। रहीम मेरा भाई है। बुरा है तो मेरा, भला है तो मेरा। तुमको बीच में चौं-चपड़ करने की जरूरत नहीं।" विक्टर के मुंह पर मानों स्याही फिर गई।

लेकिन वह दिन भी आगया जिसने शारदा मुख पर कालिख मल दी।

अपनी स्त्री को रोते तथा उसके सिर पर चोट के निशान देखकर राम जल उठा।

"मां! रहीम को समझा देना। नहीं तो, ठीक नहीं होगा। मैंने बहुत गम खाया है। यह तीसरी बार है रहीम को, अपनी भाभी को पीटते।"

शारदा अन्धी नहीं थी वह रहीम की कुचालों को देखती

आ रही थी। "शांति लेजा, बेटा!" शारदा रूखे स्वर में बोली "थोड़े दिनों बाद वह अपने रास्ते पर आ जायगा। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है।"

परन्तु उसी समय रहीम भी वहां पहुँचा। उसने शारदा का पिछला वाक्य सुन लिया था।

"...हां मेरी तो बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। कहते तनिक लाज नहीं आती। क्यों, सारी सम्पत्ति का मालिक बना दिया है अपने लाड़ले राम को। क्या मेरे पिता की सम्पत्ति पर मेरा कोई अधिकार नहीं! मुझे दूध की मक्खी समझ कर बाहर फेंक देना चाहते हो। पर याद रहे मैं भी अपना हक ले के छोड़ूंगा आज ही, ताकि रोज की [illegible] मिट जाय।"

"रहीम!"

राम उत्तेजित हो उठा, "मेरी बोटी २ कट जाय, पर घर का बटवारा नहीं होने दूंगा।"

"राम! तुम्हारी यह ज्यादती है।" अपनी कुटिल भूरी आंखों को नचाते हुए विक्टर बोला।

"अगर तुम मुझे आधा हिस्सा नहीं दोगे तो मैं जबरदस्ती ले लूंगा।" कह कर रहीम घर की ओर चल दिया।

"रहीम...!" राम रहीम की ओर लपका, लेकिन शारदा ने उसे बीच ही में पकड़ लिया।

"अगर रहीम पर हाथ उठायेगा तो मेरा खून पियेगा।" शारदा कसम दिला कर कहने लगी।

"मां...यह तूने क्या किया।"

परन्तु विक्टर को वहां से खिसकते देखकर राम की आंखों में रक्त उतर आया।

उसने दौड़ कर विक्टर का गला दबा दिया, "पाजी, यह सब कांटे तेरे बोए हुए हैं। मेरे घर में आग लगा कर तू उसमें हाथ सेकना चाहता है। ले...।"

"राम...।" चिल्लाती हुई शारदा राम के पास आई।

"यह तूने क्या किया राम ?" कहती हुई शारदा अचेत होकर जमीन पर गिर पड़ी।

शारदा की यह दशा देख कर राम का सारा क्रोध विलीन होगया और वह उसका सिर अपनी गोद में रख कर रोने लगा,

"हा, गृह-द्रोह ने हमारा सत्यानाश कर दिया।"

उधर रहीम घर के बीच में दीवार उठा कर आधा घर अपने कब्जे में कर रहा था।...

भारत माता की ही दो संतान—हिन्दू और मुसलमान में जो विरोध और स्पर्धा की भावना बढ़ी और देश के विभाजन की नौबत आई और आज भी दो भले पड़ोसियों की तरह वे नहीं रह सकते—यह खेद की बात तो है, लेकिन आश्चर्य की नहीं। ये दोनों क्यों अलग हुए इसका कुछ विवेचन इस संकेतात्मक कहानी में किया गया है।

—सम्पादक युगान्तर—

श्रम और पैसा

बस्ती के उस पार, जामुन, शहतूत, आम के पेड़ों से भरा हुआ एक बाग था। छोटी २ क्यारियों में सूरजमुखी गुलाब, चमेली आदि के खूबसूरत और सुगंधित फूल सदा खिले रहते थे। हरी २ दूब की चादर से वहां की जमीन ढकी हुई थी।

वहाँ एक छोटा सा तालाब था। जिसमें नाना प्रकार के जलचर सदैव तैरा कर थे। उसके घाट पक्के बने थे। बस्ती के अधिकांश व्यक्ति उसी में नहाने आते थे।

जब भोर में दिवाकर की मनोहर सिंदूरी-किरणें आकाश की माँग में सोहाग का सिंदूर भरती हुई तालाब की लहरों से खेलती थी तो चतुर्दिक अलौकिक आल्हाद छा जाता था। नन्ही २ चिड़ियों का चहकना, तालाब में बतखों व जल-मुर्गियों का कलरव, ठंडी हवा के झोंके...ये सब मिलकर संसार की अनेकानेक परेशानियों में डूबे हुए मानव को कुछ देर के लिए उबार लेते थे। वह इतमीनान से ठंडी साँस लेता और प्रफुल्लित होकर आसमान में उड़ने वाली चिड़ियों के संग मुक्त उड़ाने

भरता। फूलों की मुस्कराहट के साथ स्वयं को मुस्कराहट भी मिला देता। उसकी आत्मा पराग का रस पीने वाले भौंरों को देख कर तृप्त हो जाती।

मैं वहां सदा घूमने जाता। तालाब के घाट पर बैठे कर काफी देर तक मछलियों को आटे की गोलियाँ खिलाता।

उस दिन मैं काफी तड़के ही बाग में पहुँच गया। ऊपा की लाली छाने को थी। बाग़ बिल्कुल निर्जन था।

घाट पर अचानक ठोकर लगने से मैं ठिठक गया। मैं अपनी मस्ती में गुनगुनाता चला जा रहा था। मेरी दृष्टि ऊपर आकाश पर थी। जहां भोर का तारा अपनी निस्तेज-धुँधली दीप्ति से झांक रहा था।

मैंने नीचे देखा तो देखता ही रह गया और तत्काल मेरे मुँह से एक चीख निकल पड़ी। मैं ऐसा घबराने लगा जैसे मेरे पैरों में जिंदा सर्प लिपट गया हो।

मुझे स्वप्न में भी ख्याल न था कि ऐसे सुरम्य स्थान पर मौत भी मनुष्य को निगल लेती है।

यहाँ पर छाई हुई शांति और आनन्द एक प्रकार से शमशानों की नीरवता और अवसाद में परिणत हो गया।

मुझे डर तो लगा। फिर भी मैं मृतक को गौर से देखने लगा।

मृतक की उम्र कोई पच्चीसेक वर्ष की होगी। वह साँवले

रंग का नाटा युवक था। उसकी आँखें पथराई हुई थी। हाथ-पैर लकड़ी के समान कठोर हो रहे थे। मुँह झागों से भरा था।

"शायद कोई नशीली वस्तु खा कर मरा है।" मैंने अनुमान लगाया।

तभी मुझे पास में पड़ी हुई तेल की शीशी दिखाई दी। तेल तिल्ली का था। उसके हाथ के पास एक कागज की पुड़िया भी थी। मैंने झुक कर उठाया।

उसी समय, कुछ काग़ज मुझे उसके कंधे के नीचे दबे हुए दिखाई दिए। काग़ज और पुड़िया को मैंने उठा लिया। पुड़िया में कुछ अफ़ीम की डलियाँ थी।

काग़ज़ तीन-चार थे। जिन पर साफ़ अक्षरों में कुछ लिखा हुआ था।

लोग-बाग बाग़ में आने लग गए। सूरज की उज्ज्वल किरणें पेड़ों की ऊपर की टहनियों को छू रही थी।

मेरे मुँह से एक ठंडी आह निकल पड़ी, "बेचारा...!"

मैं थाने की ओर चल दिया। मेरा मन विषाद से परिपूर्ण था। मैंने उन काग़ज़ों को देखा। जो मृतक की शायद कोई आरज़ू या उसकी मृत्यु के कारण पर प्रकाश डालती हों।

मैंने उन्हें क्रम से जोड़ा और पढ़ने लगा।

"...आज मैं मर रहा हूँ स्वेच्छा से। मुझ पर किसी का दबाव नहीं है। ......लेकिन मुझे बहुत पहले ही मर

जाना चाहिए। इतने दिनों तक मैं धरती पर केवल भार-स्वरूप जीता रहा निरुद्देश्य...निरर्थक ....

...मैं जानता हूँ आत्म-हत्या एक महान् पाप है और साथ ही जघन्य अपराध। जिसका प्रायश्चित्त सैकड़ों वर्षों तक रौरव नरक की असाध्य यातनाएँ सह कर भी नहीं हो सकता।

परन्तु मैं इसी योग्य हूँ। जो व्यक्ति अपने कुटुम्ब का भरण पोषण भली भांति नहीं कर सकता, उसे जीने का क्या अधिकार है? साठ बरस की बूढ़ी माँ को भूख से बिलखते देखने की अपेक्षा अगर वह आत्म-हत्या करले तो कोई असंगत नहीं। जिंदगी के इस लम्बे सफ़र को वह भूख से तड़पता हुआ कितने दिन तक तय कर सकता है।

...फिर एक भूख हो तो! मँहगाई, बेकारी, अकाल और रोग इन सबने मिल कर कचूमर निकाल दिया। अस्थियों पर चिपटी हुई चमड़ी बिल्कुल उधड़ गई। खून का क़तरा भी नहीं बचा। केवल साँस आँखों में अटकी हुई है। जिस किसी मालिक के यहां नौकरी की, सबने पाषाण के टुकड़े की तरह खूब रगड़ा.........

मेरी आँखों में जैसे उस मृतक की सजीव प्रतिमा घूम गई। जो दुःख सहते २ बिल्कुल कंकाल हो गई थी। उनमें जीवन की केवल छाया मात्र झलक रही थी। फिर भी उसकी सूनी और निष्प्रभ आंखों में एक तेज था।

एक लम्बी सांस खींचकर मैं आगे बढ़ने लगा।

"· सरकार ने सारे सरकारी विभागों में कमी करने की घोषणा करदी। राष्ट्रीय सरकार का यह पहला क़दम था पिछड़े हुए प्रान्त को प्रजातन्त्रीय ढंग पर आगे बढ़ाने का। लेकिन वह यह भूल गई कि आज कल इस मँहगाई के जमाने में कमी किए जाने वाले व्यक्ति कैसे गुज़र करेंगे? राजस्थान पिछड़ा हुआ प्रान्त है। यहां पर कल-कारखानों का सर्वत्र अभाव है। और लगातार तीन-चार साल से सूखा पड़ रहा है। लेकिन सरकार को तनिक, भी परवाह नहीं और उसने कमी की तलवार से हम जैसे काफ़ी आदमियों को ठिकाने लगा दिया।......

मैं सोच रहा था—अब क्या किया जाय? ऐसी मनहूस घड़ी में सरकार ने जवाब दिया है कि कुछ काम बनता नहीं। जहाँ कहीं भी जाते हैं 'जगह नहीं हैं' का सूखा उत्तर मिलता है। फिरते २ हैरान हो गए, जूतों के तलवे घिस गये, पर नौकरी देवी की हम पर कृपा भी नहीं होती।.. श्रम और पैसा ...आज के युग की एक बड़ी विकट समस्या है।......आज श्रम की कोई कीमत नहीं। सब ओर उस की उपेक्षा की जाती है। पैसा उससे कहीं अधिक मँहगा है। लोग श्रम करने को तैयार हैं दूने समय तक, पर पैसा कहीं भी नहीं। आज श्रमिक मजदूर-किसान भूखा है वैसा ही, जैसा आज से सौ साल पहले था शोषित साम्राज्यवादी अँग्रेजों के समय में ....

...बिल्कुल श्रम नहीं करने वाला बनियाँ-सेठ जो अपने झूठ-फरेब के बल पर अपने तल-गृहों को सोने की ईंटों से भर रहा है। पैसा पानी की तरह बहकर अपने आप उसके पास जा रहा है। जहां कल-कारखाने हैं वहां भी यही हालत है। रोज २ होने वाली हड़तालें मजदूरों के व्यापक असंतोष को सूचक है। फिर भी पैसा श्रम की अवहेलना करके एक अकर्मण्य पूँजीपति की थैली में जा रहा है......पर क्यों ?

घर पर माँ ने मुझे उदासीन देख कर पूछा, "क्या आज भी कोई नौकरी नहीं मिली ?"

मैंने निराशा से गर्दन हिलादी।

"हे परमात्मा ! अब कैसे काम चलेगा ?" माँ बोली घबरा कर।

पर बाद में हँसी तो आई बरबस।

"घबरा मत रे, रावत ! आज नहीं तो कल नौकरी जरूर मिल जाएगी।"

मैंने मां के चेहरे पर होने वाले भाव-परिवर्तन को देख लिया था। वह मुझे प्रसन्न करना चाहती थी।

—दूसरे दिन सचमुच मुझे नौकरी मिल गई।

"देखो रावत ! तुम दसवीं फेल हो। इस लिए इस जगह पर रख रहे हैं। नहीं तो हम ध्यान भी नहीं देते। तुम्हें हमारे घर का भी काम-काज करना पड़ेगा। मंजूर है।"

बाबूजी जैसे रूखे स्वर में बोले ।

पता नहीं कितने सालों से ये बाबूजी इस काठ की कुरसी पर बैठे यह बाबूगीरी कर रहे हैं। जो बिल्कुल नीरस है, रूखी है, गतिहीन है। और दूसरे पर भी अपना रंग जल्दी ही चढ़ा देती है।

"पर मैं तो सरकारी विभाग में क्लर्क था। आप मुझे चपरासी.........।"

मैं पूरी बात भी नहीं कह पाया था कि उन्होंने बीच ही में कहा, "अगर काम करना है तो करो, वरना अपना रास्ता नापो। मेरे पास बात करने के लिए ज्यादा वक्त नहीं है।"

मैं चुप रह गया और चपरासी बनकर काम करने लगा।

"तुम सुबह घर क्यों नहीं आया?" जब दूसरे दिन मैं दफ्तर गया तो बाबूजी ने मुझे घूरते हुए पूछा।

"जी...आपने कल कहा तो नहीं था।"

"झूठ। मैंने तुम्हें पहले ही कह दिया था कि घरका काम काज भी करना पड़ेगा।" मैं मुँह लटका कर निरुत्तर खड़ा रहा।

"बड़ा कामचोर मालूम पड़ता है। ठीक से काम करो। समझे।"

"जी।"

जब पांच बजे छुट्टी होने लगी तो बाबूजी ने हुक्म सुनाया कि तुम घर जाओ। वहां कुछ जरूरी काम है।

मुझे बड़ा बुरा लगा। लेकिन मजबूरी थी।

घर पर पहुँच कर मैंने बाबूजी की पत्नी को सलाम किया। वह उतनी ही मोटी थी जितने बाबूजी सूखे हुए थे।

उसने अपने सदा चढ़े रहने वाले मुँह से जोर से कहा, "मैंने तो जल्दी बुलाया था, तू अब आया है। शायद बाबूजी ने तुझे जल्दी ही छुट्टी देदी होगी, पर तू इधर-उधर मटरगस्ती करता हुआ आया है। मैं तुम हराम खोरों को अच्छी तरह जानती हूँ।" इतना कह कर वह अपने भारी-भरकम पैरों को जोर से पटकती हुई चली गई।

मुझे बड़ा गुस्सा आया। औरत है या जानवर। रोब ऐसा जमाती है मानों मैं इसका खरीदा हुआ नौकर हूँ। नरमी तो जैसे छू तक नहीं गई। परले सिरे की जाहिल और बेहया है।

इतने में एक युवती मुसकराती हुई मेरे करीब आई। मुझे डरसा लगा। अभी कोई देखले तो क्या कहे? फिर बाबूजी की पत्नी तो मेरा दम ही निकाल दे।

"अच्छा, तुम बाबूजी के नए चपरासी हो।"

"जी।" मैंने रुंधे गले से बड़ी मुश्किल से कहा।

"अरी छिनाल!" परात में मिरचें लाती हुई बाबूजी की पत्नी चिल्लाई, "तुझे शर्म नहीं आती एक चपरासी से हँस २ के बातें करते। नीच ने हमारी नाक ही कटवा दी। आंखें लड़ाने को भी इसे दुनियाँ में सिर्फ चपरासी ही मिले। चल यहाँ से।"

"अभी चली जाऊँगी, अम्मा !" मुँह बनाकर अपनी बेशर्म आंखों को मटका कर वह बोली, "मैं तो इस से नाम पता पूछ रही थी। मैंने समझा घर पर कोई आदमी आया है बाबूजी से मिलने। मुझे क्या पता यह दफ़्तर का नया चपरासी है।......तुम्हें अच्छा नहीं लगे तो मैं यह चली......।"

बाबू जी की पत्नी ने आंखे निकाल कर कहा, "तू क्या कह रहा था ? अगर ज्यादा गड़बड़ की तो मैं निकलवा दूँगी-तेरे पहले जो चपरासी था, साले के दो दिन में दिमाग़ ठिकाने लगा दिए। समझा। ले अब यह जल्दी से मिरचें कूट दे।

"मिरचें......!" मेरा सांस ऊपर चढ़ गया।

"मिरचें तो औरतें कूटा करती हैं।" मैंने दबती जबान से कहा।

"आ हा हा SS......। औरतें......। शायद मिरचें कूटने से साहब जादे के हाथ में छाले पड़ जाते हैं। अगर ऐसा था तो बाबूगीरी करनी थी। चपरासगीरी क्यों की।... हूँ ..।" और वह भुन-भुनाती हुई चली गई।

एक बार तो मन में आया कि इस 'भूतनी' के पीछे ही यह मिरचों से भरी परात फेंक दूं। तनख्वाह मिलती है दफ़्तर में काम करने की और यह मुफ्त में अपने घर का बोझा ढोवाती है। कुम्हार का गधा समझ रखा है। फिर ...

होकोई ढंग का।"

मैंने पैनी दृष्टि से मिरचों की ओर देखा। वे जैसे आग में तपे हुए तीरों के फल के समान मेरे दिल में चुभ गई। ..

मैं मिरचें कूटने लगा।

ओखली में जैसे २ मूसल से कूटता था, वैसे २ मेरा दम खंखसे घुटता जाता। धीरे २ खांसी भी शुरु हो गई। सारे शरीर में, विशेष कर हाथ-पैरों में जलन लग गई। आंखों में पानी भर आया।

थोड़ी देर वाद में मैं छींक पर छींक और बुरी तरह खांसी करने लगा। आंखों से आँसुओं की सरिता सी वहने लगी। नाक से पानी का स्रोत फूट निकला।

"आः छीः!" और मिरचों में नमी भर रही थी।

मेरी छींक और खांसी रुकने का नाम तक न लेती थी। हाथ से जलन लगे स्थानों को गंजे कुत्ते के समान बुरी तरह कुचर रहा था।

मेरी इस हालत को देखकर वाबूजी की लड़की खिल-खिला कर हँस रही थी।

क्रोध से भुर्राती हुई वाबूजी को पत्नी आई। उसने आव देखा न ताव और लगी जमाने धौल पर धौल, "हरामजादे... सूअर के वच्चे! तूने मेरी सारी मिरचें खराब कर दी। अगर खाँसी-छींक आती थी तो दूर क्यों नहीं हट गया? कफ और

मैला मिला कर तूने मेरी दो सेर मिर्चों का सत्यानाश कर दिया। क्या मेरी तक़दीर में ऐसे ही नौकर लिखे हैं। नासपीटा कहीं का। दूर हट, नहीं तो अभी लात जमाऊँगी।"

मैं उस राक्षसी का विकराल रूप देख कर तथा उसकी जंगली गालियाँ सुन कर सहम गया और अपना सा मुँह लेकर वापिस घर आगया।

अगले दिन बाबूजी ने "तुम्हारा काम ठीक नहीं है" कह कर नौकरी से अलग कर दिया।......

इसी भांति दूसरे दफ्तर से भी मुझे निकाल दिया गया।

हालांकि मैं वहां सुबह छः बजे पहुँच जाता। सारे कमरों को झाड़ू लगाता। फिर बाबूजी के घर पर काम करने जाता। साग सब्जी लाने के बाद मैं उनके यहां पानी ढोता। ठीक समय पर बच्चों को स्कूल पहुँचाता। फिर सारे दिन दफ्तर में काम करता।

एक दिन बाबूजी ने गुसलखाने से निकल कर मुझ से कहा, "रावत! ज़रा मेरी धोती छींट देना।"

मैं पानी लाकर थोड़ा दम ले रहा था

धोती छींटना मेरे लिए अपमान-जनक था। इसलिए मैंने इन्कार कर दिया।

बाबूजी लाल-पीले हो गए, "क्या तुम नहीं छींटोगे?

जी नहीं। धोती छींटना मेरा काम नहीं। आप मुझसे

शहर-बाज़ार का दूसरा काम करवा सकते हैं।" मैंने शांत स्वर में कहा।

बाबूजी आपे से बाहर हो गए और मुझे जोर का धक्का देकर बोले, "निकल जा। हरामी! मुझे तेरी कोई ज़रूरत नहीं।

बाबूजी का धक्का देना मेरे हृदय में शूल की भांति चुभ गया।

"बाबूजी! आप मुझे बेकसूर क्यों धक्का दे रहे हैं? आप को रखना नहीं हैं तो जवाब दे दीजिए।...आप बाबू हैं, मैं एक चपरासी। लेकिन इससे पहले हम दोनों इन्सान हैं... और इन्सानियत के नाते हम दोनों भाई हैं...। इतना कह कर मैं वहां से चला आया।

घर पर मांने कुछ बचे-खुचे बाजरे के दानों को कूट काट कर एक रोटी मेरे लिए बनाई थी। आप चबेना चाब कर पेट की निरंतर जलने वाली अग्नी को कुछ देर के लिए शांत कर देना चाहती थी।

मेरा मुँह उतरा हुआ था। उसने सोचा काम की अधिकता की वजह से यह हालत है।

वह रोटी पर नमक-मिर्च पानी में भिगो कर ले आई।

"ले खाले। ठंडी हो जाएगी।"

मैंने रोटी लेली।

माँ अपने स्थान पर जाकर बैठ गई और मेरी ओर पीठ

करके चने फाँकने लगी। वह कनखियों से देखती भी जाती थी कि मैं देख तो नहीं रहा हूँ।

पर मैंने देख लिया।

मेरा विवश क्रोध आँखों में से द्रवित हो कर बहने लगा।

—जेठ-आषाढ़ की झुलसती धूप...जिसमें सारे दिन सूर्य आग के बाण बरसाता रहता है जमीन भी तवे के समान तपा करती है। लू के झोंकों से शरीर कबाब की तरह भुन जाता है। लोग-बाग अपने घरों में बैठे ठंडी हवा ले रहे हैं। श्री सम्पन्न खस की टट्टियों का आनन्द उड़ा रहे हैं।

और मैं भूख से बेताब हुआ बेतहास दौड़ा चला जा रहा हूँ ....

मुझे न धूप की परवाह है और न लू की। मुझे सिर्फ एक चिंता है नौकरी की।

चार दिन से मैं भूखा हूँ। जर्जरित बूढा शरीर माँ का खाट पर पड़ा अपनी शेष अंतिम घड़ियां गिन रहा है।

अगर आज कोई चार पैसे देकर भी मुझ से महानिंद्य लज्जा जनक और सम्मानहीन कार्य भी कराले तो मैं तैयार हूं। अगर ऐसे मनहूस और पतले दिन आजाने का मुझे पता होता तो मैं कभी भी चपरासगीरी नहीं छोड़ता। झूठे आत्म सम्मान के पीछे मैंने भरी थाली के ठोकर मारदी। मेरी अक़्ल फिर गई थी उन दिनों।

अब जहां कहीं जाता हूँ...जगह नहीं है...का जवाब मिलता है...आखिर सारी जगहें गई कहाँ? फिर उस पर होने वाली कमी ने बेचारे ग़रीबों को कहीं का न रखा।...

...आज सब अपने मुनाफे को देखते हैं। कोई यह नहीं सोचता कि अधिक से अधिक श्रमिकों को काम दें। ज्यादा मुनाफे की मनोवृत्ति को त्याग करदें। पर अपने स्वार्थपूर्ण त्याग के चक्कर में पड़े कुछ नहीं कर सकते।...सरकार भी इससे वंचित नहीं है...वाह रे लोभ!

आज श्रम पैसे का गुलाम है। पैसा उसका तिरस्कार कर रहा है। फिर भी श्रम गिड़गिड़ा कर उसके पैर चूम रहा है। श्रम खुद पंगु है, पदाक्राँत है और कोने में पड़ा अपनी हीन दशा पर आँसूं बहा रहा है। उसका कोई सहायकन हीं उद्धारकनहीं। और...पैसा समस्त विश्व पर एक छत्र राज कर रहा है निर्द्वंद्व .....

आज का दिन भी यूँही जायेगा। मैं जानता हूं नौकरी मिलना मुश्किल है। घर पर भूख से कलपती माँ को मैं अपनी आँखों से नहीं देख सकता। मुझे अब घर जाते लज्जा लगती है। जिस माँ ने मुझे अपने सीने का खून पिला कर अपने दुर्दिनों में भी जिंदा रखा, अनेकानेक दुःख सहे, पर मेरी किसी न किसी तरह रक्षा करती रही। उसको मैं अब कौन मुँह दिखाऊँ?

हाँ! जननी !! मैं तेरा चिर ऋणी हूँ। कभी उऋण नहीं हो सकता। मैं तेरा नालायक बेटा हूं, जिसने तेरी यह गत बनाई . भगवान् कभी क्षमा न करेंगे।

अब मेरे पास एक ही रास्ता है। इस संकटापन्न जीवन का अंत ही कर देना। अभाव ग्रस्त इस कोढी जीवन को कब तक चलता रहूँ...मैं जा रहा हूँ अफीम की दुकान पर जहाँ अपनी माँ की एक बाली बेचकर, जिसे उसकी अचेतावस्था में कान से खोल लाया हूं, अफ़ीम लाऊँगा।

दोस्तों! यह आखिरी नमस्ते है...यह कहानी केवल मेरी ही नहीं बल्कि दुनियाँ के हजारों मजदूरों की है, जो तड़पते हुए दम तोड़ रहे हैं........"

मेरी आँखें क्रोध और वेदना से आद्र हो गईं।

मैं काफी देर तक विचारता रहा। फिर थाने की ओर चल दिया।

अंतिम-अभिलाषा

“महात्मा गांधी की जय !”
“भारत माता की जय !!”
“रानी उषा की जय !!!”

गगन-भेदी जय घोष करता हुआ एक लम्बा-चौड़ा जन समूह मँथर गति से आगे बढ़ता चला जा रहा था। लोगों के हाथों में लम्बे-लम्बे झंडे थे जिन पर लिखा था नैटाल कांग्रेस जिन्दाबाद . हमें नागरिक अधिकार दिये जायं ...ट्रांसवाल में हमारा प्रवेश निषेध करना मानवीय अधिकारों का गला घोंटना है...काले गोरे का भेद मिटे ..इत्यादि......इत्यादि देश-प्रेम के रंग में रंगे हुए, वे स्वतंत्रता देवी के उपासक साम्राज्यवादियों की कठोर दासता की बेड़ियां तोड़ने जा रहे थे।

कहां एक ओर ये भूखे नर-कंकाल, फटे-पुराने चिथड़ों में लिपटे हुए, कहां दूसरी ओर साम्राज्य-लोलुप विलासी गौरांग महाप्रभु। एक के पास रहने को टूटी टपरी भी नहीं, दूसरे के पास भोगने को विस्तृत आधा संसार। एक के पास खाने को चबेना भी नहीं, दूसरे के पास मिष्टानों से भरे

अंतिम-अभिलाषा

सैंकड़ों थाल। एक के पास अपनी आत्म-रक्षा के लिए एक छोटा सा डण्डा भी नहीं, दूसरे के पास अस्त्र-शस्त्रों से भरे भण्डार।........

गोरों के द्वारा अपनाई हुई अन्यायपूर्ण नीति के विरुद्ध तथा उनके द्वारा लगाये गये कुत्सित प्रतिबंधों का विरोध करने वे सत्यनिष्ठ जा रहे थे।

उषा, उषा की भांति कांतिवान-जीवन की एक अनोखी गौरव-गरिमा हाथ में राष्ट्रीय झण्डा लिए जुलूस के आगे २ चल रही थी। उसकी शांत गम्भीर भाव-भंगी आतुर विश्व को अमर क्रांति का मूक संदेश दे रही थी।

+ + + +

"अरे सामने से तो कोई मोटर आ रही है!"

सारे जुलूस में सनसनी फैल गई। कई लोगों के तो हाथों के तोते उड़ गये। सारा जुलूस रुक सा गया।

सबने देखा, मोटर में से पुलिस इन्सपेक्टर वोकर उतर रहा है।

"ओह वोकर! नीच कहीं का!" लोगों ने घृणा से, भ्रू-संकुचन कर लिया। सबके मन में रोष का बवण्डर उमड़ पड़ा।......वही वोकर है यह, जिसने अपनी पिस्तोल से सैंकड़ों भारतियों तथा हब्शियों को मौत के घाट उतार दिया जिसकी कृपा से आज सैंकड़ों निर्दोष कारागार की हवा खा रहे

हैं। वही निर्दयी, आज उनके सामने खड़ा है। सबके मन में आया कि वे इस शैतान को अपनी शरारतों का अच्छा मजा चखाएं, परन्तु अहिंसावादियों के लिए यह असम्भव था।

उनके अहिंसा के सिद्धांत में तो कहा है कि अगर कोई उनके बांए गाल पर तमाचा मारे तो उसके सामने अपना दाहिना गाल भी कर दो फिर वे ऐसा हिंसापूर्ण कार्य कैसे कर सकते थे। सब लोग अपने होंट चबाते हुए चुप रहे।

"खबरदार! अगर आगे एक भी कदम बढाया तो!" पिस्तोल निकाल कर बोकर बोला।

इसी समय दो लारियां लटैन सिपाहियों से भरी हुई आ गईं। बोकर अपनी लम्बी २ मूछों पर ताव देते हुए अकड़ कर कहने लगा, "ओह डेम फूल ब्लडी डॉग्स अगर तुम अपना भला चाहते हो तो पीछे चले जाओ, नहीं तो लाठी चार्ज करना पड़ेगा।"

एक युवक, जो उषा के पास खड़ा था, दांत किटकिटा कर बोला, "अरे यमदूत........!"

"विजय...!" उषा ने उसे टोका, "क्यों किसी की व्यर्थ में भर्त्सना करते हो? ये तो हैं बेचारे भाड़े के टट्टू, जो दूसरों की टिच टिच पर चलते हैं। हमें तो उस ओछी सरकार से लोहा लेना है, जिसने काले-गोरे की घृणित नीति को अपना कर अपनी दुर्बुद्धि एवं स्वेच्छा का लज्जास्पद परिचय

दिया है।......बढ़े चलो...बढ़े चलो।" "भारत माता की जय।"

जन समूह गम्भीर समुद्र की नाई नाद करता हुआ आगे बढ़ा।

"अब भी समझदारी से काम लो, आगे बढ़ने का दुःसाहस मत करो, नहीं तो......।" बोकर गला फाड़ कर चिल्लाया

लेकिन वहां कौन सुनने वाला था। जय जयकार के भीषण गर्जन में लोग अपने आपको भूल से रहे थे।

अन्त में हुआ वही जो होना था। पुलिस के बर्बर भेड़िये अहिंसा के पुजारी तथा शांति के दूतों पर टूट पड़े।

लाठियों के प्रहार से लोग कांप उठे। उनके पैर उखड़ने लगे।

उषा की ओज पूर्ण वाणी सुनाई दी। "पीछे मत हटो... आगे बढ़े चलो...बापू का अधूरा कार्य पूरा करना है।"

लोग टस से मस नहीं हुए। उनकी नसों में मानो नूतन रक्त संचारित होने लगा। वे अपूर्व साहस से "महात्मा गांधी की जय" बोलते हुए आगे बढ़े।

अनुपम साहस था उनका, लाठियाँ सह रहे थे, पर मुँह से उफ तक नहीं कर रहे थे।

एक पुलिस वाले ने जय जयकार करती हुई उषा पर कस कर लाठी का प्रहार किया। वह इस भीषणाघात को सहन न

कर सकी और चीत्कार करती हुई गिर पड़ी।

× × × ×

"ओह!" एक लम्बी बेहोशी के बाद उषा ने अपनी आंखें खोलीं। उसके सिर पर पट्टी बंधी हुई थी। सिर में ऐसा दर्द हो रहा था मानो सैंकड़ों बिच्छू एक साथ डंक मार रहे हों।

उसने निर्निमेष-नेत्रों से चारों ओर देखा। सूना कमरा, जिसमें सील की दुर्गन्ध उसकी नाक सड़ा रही थी। एक टूटी-टाटी खटिया, जिस पर वह लेटी हुई है। कुछ मैले-कुचेले बासन यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं।

निर्धनता का ऐसा विकृत स्वरूप देख कर उसका करुण हृदय क्षुभित हो उठा। ".. यह मकान तो शायद करीम का प्रतीत होता है ..." उसने अनुमान लगाया।

फिर वह दीर्घ निःश्वास छोड़ कर सोचने लगी, "कितना गन्दा मकान है। हाय, जो भोर से सांझ तक अपना खून पसीना बहाकर काम करते हैं—उनके लिए 'यह मकान'। जो दिन भर मगर मच्छ की भांति पड़े रहते हैं जिनको यह पता नहीं कि कब सूर्य उदय होता है और कब अस्त; खस की टट्टियों के पीछे पड़े आनन्दोपभोग करते हैं। वाह रे भाग्य! मुझे भी गरीबों का उपहास करने में ही आनन्द आता है।"

"हम पापी हैं!" वह अपने विचारों की सरिता में बहती रही, "हम-लोग इन गोरों की स्पर्धा नहीं कर सकते। इनके

प्रासाद हमारे पैरों के स्पर्श मात्र से ही अपवित्र हो जाते हैं। हमारी देह की छाया पड़ने से इन गोरों का गोरापन भ्रष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त हम असभ्य हैं और असभ्यता का स्पष्ट प्रमाण है हमारी काली चमड़ी।...ओह, जिन्होंने छल कपट से नृशंसता-पूर्वक सैंकड़ों देशों को पदाक्रांत किया। स्वार्थ के वशी-भूत होकर जिन्होंने दो-दो लोम-हर्षक विश्व-व्यापी महायुद्ध लड़े, जिनकी स्मृति मात्र से दिल दहल उठता है, वे सभ्य होने का दावा करते हैं।...हम लम्पट हैं, मूढ़ हैं, अस्पृश्य हैं और साथ ही साथ चिरताड़ित। तो इन गोरांग महाप्रभुओं के भ्राता-गण पूर्व के हमारे कुछ देशों को अपने 'राष्ट्र मंडल' जैसे श्वेतों के गुट में समानता का अधिकार क्यों दे रहे हैं? क्या इसलिए कि वे अति शक्तिशाली हैं और जिनसे उन्हें अपने अस्तित्व को खतरा है।"...ओह।" अचानक उसके सिर में पीड़ा होने के कारण उसकी विचार-शृंखला टूट गई।

"बहनजी! क्या मैं अन्दर आ सकता हूं।?"

किसी पुरुष का विनम्र स्वर सुन कर उषा चौंक पड़ी। अपने आपको सम्हालते हुए उसने कहा, "हां आ सकते हो।"

"अब मिट्टी पलीद होगी इन गोरों की।" अन्दर प्रवेश करते हुए वह युवक स्वतः बड़बड़ाया।

"कौन विजय? आओ! क्या कह रहे थे तुम?"

"गोरों और हब्शियों में संघर्ष ठन गया है करीब घंटे भर पहले से। हब्शी लोग वह हाथ बता रहे हैं कि बेचारे गोरों को छठी का दूध याद आ रहा है।"

सुनकर उषा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

"मैं अपने सारे आदमियों को तैयार करके आया हूँ।"

"क्यों?" उषा ने कठोर स्वर में पूछा।

"अब हम गोरों के अधिक अत्याचार सहन नहीं कर सकते। तितिक्षा की भी पराकाष्ठा होती है। जब तक हम इनका प्रतिरोध न करेंगे, ये हम पर निःशंक हावी रहेंगे। विजय के मुख पर प्रतिहिंसा की भावना की छाया नाच उठी। उषा ने स्थिति समझी।

"...पर हिंसा का आश्रय लेकर प्रतिरोध करना कहां की बुद्धिमानी है। जानते हो, हमारा सिद्धांत क्या है?

उषा के स्वर में तीखापन था।

"......सत्य और अहिंसा।"

"फिर हिंसा का अवलम्ब महान् पाप है। क्या इससे बापू की आत्मा को ठेस न पहुँचेगी?"

"..............."

"विजय! पागल मत बनो।"

कुछ न कहकर विजय कमरे से बाहर होगया।

× × × ×

भयानक मारकाट।

धुंआधार गोलियों की वर्षा।

गोरों को कोई काला दिखाई देता तो वे उसे जीता न छोड़ते, कालों के कोई गोरा हाथ लगता तो वे उसे कच्चा ही चबा जाते।

क्षुद्र रंग-भेद की भावना मानवता का विनाश करने का उपक्रम कर रही थी।

गोरों की कोठियां एवं कालों की झोपड़ियां धू धू करके जल रही थीं। स्त्री और बच्चों का आक्रंदन गर्वीले मानव की इस अनिष्टकारक थोथी सभ्यता को धिक्कार रहा था। हृदय विदारक दृश्य था, रोमाञ्च हो उठता था।

जलती हुई चिताओं के बीच में अपने लड़खड़ाते पैरों को सम्हालती हुई उषा अस्त-व्यस्त अवस्था में चली जा रही थी। कहीं भी मनुष्य का नाम तक भी न था। चारों ओर श्मशान की सी डरावनी स्तब्धता व्याप्त थी। कभी २ आक्रांत व्यक्तियों का दारुण कराहना सुनाई पड़ता था।

वह सुहावना सुरम्य स्थान उस हिन्दू विधवा की भांति निर्जीव, निस्तेज एवं निस्पृह होरहा था। जिसके अरमानों की बस्ती अभी २ विध्वंस हो चुकी थी।

सभ्यता की डींग हांकने वाले मानव की ऐसी संहारात्मक प्रवृत्ति का अवलोकन कर वह सिहर उठी, "हां! अभी विश्व-शांति एवं विश्व बन्धुत्व कोसों दूर है।" एक ठण्डी श्वास छोड़

कर उपा बोली।

लेकिन उसी समय ईंट पत्थरों के बीच में दबा हुआ मजीद का निर्जीव शरीर उसने देखा।

"अरे मजीद ..."उषा के चेहरे पर रेखायें खिंच गईं

"क्या सचमुच विजय........" उसकी आंखों के आगे अंधेरा सा छाने लगा।

दाहिनी ओर की कोठी से उसे भीषण कोलाहल का स्वर सुनाई पड़ा, जिससे उसका ध्यान अपने आप उधर आकृष्ट होगया।

"अरे! यह तो चोकर की कोठी है।" और वह उधर ही चल पड़ी।

× × × ×

"पापी चोकर! कहां है तेरी खूनी पिस्तौल? देख, यह है मेरे पास, जिससे मैं तेरे कलेजे को बेधूंगा...हा...हा..."

विजय एक भयानक हंसी से हंस पड़ा।

विजय हाथ में पिस्तौल लिए चोकर के सम्मुख साक्षात काल भैरू के सदृश खड़ा था। बेचारा चोकर भीगी बिल्ली बना हाथ ऊंचा किये निष्प्राण सा खड़ा था। उसके मुख पर भय की काली स्याही पुती हुई थी।

विजय की हंसी सुनकर चोकर कांप उठा।

उषा ने कोठी में प्रवेश करते हुए इस दृश्य को देखा तो

उसके पैर तले की जमीन खिसक गई।

"अरे, यह तो गजब हो रहा है। अगर कहीं वोकर की हत्या हो गई तो इस सारे देश में भारतीय और हब्शी चिराग लेकर ढूंढने से भी न मिलेंगे। ये गोरे उनको चुन चुन कर मार डालेंगे।"

"ओकर सावधान," विजय आँखें निकाल कर बोला। उषा का हृदय धक् धक् करने लगा।

"ठा...ठा...। गोलियों का स्वर दशों दिशाओं में प्रतिध्वनित हो उठा।

लेकिन यह क्या? उषा आर्त-नाद करती गिर पड़ी। हिंसा रूपी दावानल को बुझाने के लिए, कालों की रक्षा के निमित्त उसने अपने आप को बलिदान कर दिया।

कैसा आलौकिक आत्मोत्सर्ग था!

"कौन उषा?" विजय का सारा क्रोधोन्माद तिरोहित हो गया।

"बहिन जी!" विजय फूट २ कर रोने लगा।

"विजय! मेरी एक प्रार्थना है।" उषा रुक २ कर बोली।

"क्या?"

"हिंसक मनोवृत्ति का परित्याग करदो, इससे विश्व का कल्याण सम्भव नहीं......"

"...इतिहास उठा कर देखलो। हिंसा के द्वारा कभी भी

विश्व में शान्ति का राज्य नहीं हुआ और न गुलामी ही दूर हुई। वरन् एक गुलामी की जगह कई गुलामियों का जन्म हुआ।"

"...बापू ने जो मार्ग बतलाया है उस पर चलने से "

ओह......।" दर्द से वह कराह उठी।

"...बोकर और विजय......" कराहती हुई उषा कहने लगी, काले गोरे की यह कलुषित भावना आज विश्व के लिए एक महान् अभिशाप बन गई है। जिससे मानवता भी त्रस्त है। इसका मूलोच्छेदन सत्य और अहिंसा के पथ पर चल कर करना है यह मेरी अन्तिम अभिलाषा है यह मेरी अन्तिम अभिलाषा है...यह मेरी अं...ति...म ..अभि . ला...षा है" और उसकी बंदी आत्मा देह पिंजर से मुक्त होकर अनन्त में लीन होगई।

विजय और बोकर रोते हुए उसके चरणों में गिर पड़े।

उषा के मुख पर एक अलौकिक शान्ति थी।

स्वप्न द्रष्टा

वह देश द्रोही था।

वर्तमान राष्ट्रीय विचार धारा, राष्ट्रीय आदर्श और राष्ट्रीय जीवन का घोर शत्रु......

लड़खड़ाते हुए सामन्तवाद का समर्थक और आतंकवाद का पोषक....... ।

राष्ट्रीय सरकार का वह प्राणों का गाहक था। अगर उसके पास और अधिक लड़के होते तो वह अवश्य उसका सिर कुचल देता......

वह शक्ति का पुजारी था। उसकी छिपने की गुफा में एक शक्ति की भव्य प्रतिमा थी। उसके चारों हाथों में त्रिशूल, खप्पर खांडा और राक्षस की खोपड़ी थी। लम्बी आरक्त जीभ और अधिक रक्त पीने के लिए मुँह से बाहर निकल रही थी। गले की मुँड माला से उसकी आकृति बड़ी भयंकर प्रतीत होती थी। अमावस्या की काली रात्रि के समान उसके घने फैले केश हृदय में त्रास उत्पन्न कर देते थे। काली स्याह नग्न देह को देख कर प्राण हिल उठते थे। वह उसकी घण्टों पूजा- प्रार्थना करने में

आसन मार कर बैठा रहता था।......

उसके साथी कहा करते थे कि उसे देवी का अमरता का वरदान है। वह औतार है और आधुनिक शासन प्रणाली के सूत्राधार जो वास्तव में 'रावण के वंश' के हैं, को नेस्तेनाबूद करने के लिए इस भूधरा पर अवतीर्ण हुआ है। वह दिन दूर नहीं, जब वह भारत का भावी सम्राट होगा। भारत की राज-लक्ष्मी भी हाथ में वरमाला लिये उसको वरने के लिए प्रस्तुत है।............

उसकी बड़ी २ आंखें हिंसक पशु की तरह बड़ी डरावनी थी। उसमें रक्तिम लाल डोरे अग्नी में से निकलने वाली लपटों के समान दीखते थे। मुखाकृति बड़ी भयानक थी शेर के समान जब बोलता था तो मानों साक्षात शेर दहाड़ रहा हो। राजपूती शौर्य का तेज पुँज उसके प्रशस्त भाल पर दमक रहा था।

उसके नाम से सारा प्रान्त कांपता था। उसकी आक्रमण भेरी सुनकर पुलिस के छक्के छूट जाते थे। जब लोग यह सुनते थे कि 'रणधीर' आ रहा है तो उनकी आधी जान वहीं निकल जाती थी और हड़बड़ा कर धन माल को भगवान के भरोसे छोड़ कर भाग जाते थे।

दिन दहाड़े वह महाजनों तथा धनियों को लूटता था। और माल वह [illegible] की [illegible] में मिला देता।

× × + ×

पहले रणवीर एक सामान्य जागीरदार था। अपनी जागीर के गाँव में वह एक राजा की भाँति निर्द्वन्द शासन करता था। उसका स्वभाव कठोर था, फिर भी उसको ईश्वर के सदृश पूजने वाली जनता से वह प्रेम करता था।

राष्ट्रीय सरकार ने, किसान, जो कि सदियों से सामंतवादी शक्तियों का सीधा शिकार रहा है, को मुक्त करने के लिए जागीरदारी व जमींदारी उन्मूलन बिल पास किया । फलस्वरूप सारी जमीनें व जागीरें खेतीहर किसानों में बांट दी गई।

जागीरदारों ने यह अपना अपमान समझा। रणवीर के दिल पर भी एक बड़ी भारी चोट लगी। वह घायल चीते की तरह तड़पने लगा।

उसी समय आस पास के कई जागीरदार भीगी-बिल्ली बने अपना सा मुँह लेकर उसके पास आये। उनमें से प्रताप-सिंह जो ज्यादा अक्खड़ था बोला विक्षुब्ध होकर, "रणवीर-सिंह, जी! अब हाथ पर हाथ धरे काम न चलेगा। यह राष्ट्रीय सरकार रूपी राहु हमको निगलता चला जा रहा है। हमारा तेज हमारी मर्यादा, इत्यादि सब कुछ मिटा दिया है। सबसे बड़ी बात तो यह कि हमारे बाप दादों द्वारा प्रतिष्ठित हमारी राज-लक्ष्मी तक छीन ली; हमको दर २ का भिखारी बना दिया।"

क्षण भर बाद में वह उत्तेजित हो कर कहने लगा "जातीय सरदारों, अब एक दूसरे का क्या मुँह देखते हो? हमने

जिन राजा महाराजों को अपना नेता चुना था, उन्होंने कायरों की भांति आत्म समर्पण कर दिया हमसे बिना पूछे। वे बिल्कुल उस बिच्छू की तरह शक्तिहीन हो गये हैं जिसका डंक टूट चुका है। उन्होंने अपने ही हाथों अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारी, किस को दोष दें। हमारे पास अब दो ही रास्ते हैं। एक तो यह कि हाथों में चूड़ियाँ पहन कर अपने महल में बैठ जायं और अपने अच्छे दिनों को याद करके इन दुर्दिनों पर आंसू बहायें—या दूसरा, सच्चे राजपूत की तरह हाथ में तलवार लेकर 'इन पिशाचों' को खाक में मिला दें और अपनी राजलक्ष्मी वापिस हस्तगत करें। बोलिए, कौनसा रास्ता पसन्द है? पहला रास्ता फूलों की शय्या पर सोने का है और दूसरा बीहड़ कंटकाकीर्ण।"

कोई भी नहीं बोला। सबके मुखों पर हवाइयां उड़ रही थीं। उसी समय मेघनाद की तरह रणवीर गरजा "कायरों! क्या इसी लिए मेरे पास आए हो? चुल्लू भर पानी में डूब मरो-जाओ मेरे सामने से। शर्म नहीं आती तुम्हें जो एक कापुरुष की तरह सिर झुका कर खड़े हो। तुम्हारा [illegible] भी [illegible] करने के लिये तैयार है। तुम [illegible] ।"

[illegible] । [illegible] [illegible] हो गई। [illegible]

मुन्ना बड़ी जोशीली हो गई ?

"हाँ यों! अपनी जबान से कहो कि हमें उपेक्षित जीवन नहीं चाहिए! हम राजपूत हैं और सच्चे राजपूत की तरह जीना चाहते हैं। महाशक्ति का पावन नाम लेकर आप मेरे पीछे आ जाइये। जब तक हाथ में तलवार है, हृदय में अटूट साहस है तथा आखों में राजश्वी तेज है, तब तक दुनियां की कोई भी शक्ति तुम्हें पराभूत नहीं कर सकती। सम्भालिए अपनी तलवार और घोड़े की लगाम"........

और उसी दिन से उसने बगावत का झंडा खड़ा किया तथा डाकू बन कर वनों में विचरने लगा।

रजनी देवी तिमिर की काली साड़ी पहने शोक विह्वल हिन्दू विधवा की भांति बड़ी आर्त लग रही थी। परन्तु साँय २ करता ठंडी पवन का मनहूस स्वर बड़ा त्रास पूर्ण था। जिससे सारा वातावरण दिल दहलाने वाला हो रहा था। ऊपर गगन मंडल छोटे-मोटे तारों से भरा पड़ा था जैसे वहां दीपावली हो रही हो। उनकी द्युति मणियों हीरों के समान अत्यन्त ही मनोहर थी। कई मुसकरा रहे थे, कई टूट रहे थे, और कई अपनी पूँछ की अनोखी छटा पसार रहे थे। जैसे वे अंधकार में डूबी हुई दुनियां की हँसी उड़ा रहे हों।

कस्बे के लोग अपने घरों में सोये हुए थे। सरदी हड्डी २ में तीक्ष्ण तीरों के समान चुभ रही थी। ठिठुर कर कुत्ते अलग

चिल्ला रहे थे। गीदड़ जंगल में शोर मचा रहे थे। जैसे वे किसी भावी विपत्ति की ओर इंगित कर रहे हों।

चौकीदारों ने आज जैसी काली डरावनी रात पहले कभी नहीं देखी थी। वे निडर बेधड़क गश्त लगाने वाले डर गए। उनको श्मशान में उछल कूद करने वाले प्रेतों की छाया सी नज़र आने लगी।

वे दुबक कर अपने घर में घुस गये।

इतने में घोड़ों की टापों से सारा वातावरण कांप उठा। निद्रित अथवा अर्ध निद्रित अवस्था में सोये हुए व्यक्ति चौंक पड़े।

उन्होंने अनुमान लगाया शायद कोई प्रकृति उत्पात हो। परन्तु थोड़ी देर बाद में बड़े सेठजी की हवेली धांय २ करने लगी। पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों का हृदय विदारक क्रंदन चारों ओर गूंज उठा।

सारी गलियों में घुड़ सवार बंदूकें भाले लिये सरपट दौड़ रहे थे। बन्दूकों की ठाः ठाः की आवाज सुनाई पड़ रही थी और साथ ही भूमिसात होते हुए व्यक्तियों का दर्दनाक चीत्कार।

जलती हुई हवेलियों से चारों ओर प्रकाश हो गया। लोगों ने देखा [illegible] पर डाकुओं का आक्रमण हुआ है सो वे [illegible], जिसको जिधर राह मिली।

[illegible] डाकुओं ने लूट, [illegible] धनियों और सुनारों की [illegible]

आग की भेंट चढ़ा दिया और उनको मौत के घाट उतार दिया।

जब डाकुओं को पता लगा कि पुलिस आ रही है तो वे सारा सामान लाद कर और वहां के पुलिस इन्सपेक्टर का मकान अच्छी तरह लूट कर चम्पत बने। पुलिस ने बहुत पीछा किया पर डाकू हाथ न लगे।

× × × ×

पूर्वी क्षितिज पर लाली छाने लगी। पहाड़ों पर की हरितिमा पर अरुणिमा मुसकराने लगी। पक्षीगण माधुर्य पूर्ण स्वर में ऊषा का अभिवादन करने लगे। पेड़ और पौधे शीतल वायु में अपनी सौरभ भरने लगे। तृण और गुल्मों से आच्छादित धरा भी एक अनूठे रूप में खिल उठी।

प्रकृति की यह सुषमा भला किसको अपनी ओर आकर्षित नहीं करती।

श्रम से अभिभूत हुए डाकुओं का खिन्न मन पुलकित हो गया।

सामने छिपने की कंदराओं को देख कर डाकुओं के मुखों पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

कंदराए कहीं खुली थीं कहीं बंद, जिससे अंधेरा विशेष न था। जहां डाकू रहते थे वहां बिल्कुल सफाई थी। वहां बड़े २ पत्थर रखे थे। उनकी बंदूकें एक ओर रखी थीं। तलवारें और भाले भी यथा स्थान पड़े थे।

हुए थे। निस्तेज लोचन रोने से काफी लाल थे।

वह भीत मृगी की तरह थर २ कांप रही थी।

पर धीर तव्ध।

रणवीर धीरे २ मुसकराया।

"बोल लड़की! तेरा नाम क्या है?" रणवीर ने पूछा।

वह चुप रही।

"बोल तेरा नाम क्या है?" आँखें निकाल कर बोला रणवीर।

वह सिहर उठी।

"क...ला...व...ती...।" चीण स्वर में अटकते हुए कहा उसने।

"अच्छा।" तुम्हारा कुशलपाल से क्या संबन्ध है?"

"मैं बहिन हूं।"

"ओह.........।"

"ले जाओ इसे। बंद करदो।" रणवीर ने कहा, "यह बड़े काम की चीज है। वक्त आने पर उसका अच्छा उपयोग किया जाएगा।"

(३)

कलावती बड़ी देर तक रोती रही उसका मर्मस्पर्शी रुदन सुनने वाला वहां कोई नहीं था। ऊबड़ खाबड़ भोंडी चट्टानों से घिरी हुई वह गुफा और उजाला करने वाली वहां की मशाल

जैसे इसकी हालत पर तरस खा रहे थे—क्योंकि उन्होंने यहां कइयों को बिलखते देखा, चट्टानों से यहां सिर फोड़ते देखा, और मशाल से अपने आप को जलाते देखा।

उद्वेलित होकर आँसुओं की बरसात बरस रही थी उसकी आंखों से। मानों उसके हृदय में रखी हुई आंसुओं की थैली अब एक ठेस लगने से फट चुकी हो।

वह बहुत चाहती थी अपने पर काबू करने के लिए, लेकिन रही असमर्थ।

"हे भगवान! तूने मुझे कहां से कहां ला पटका। ऐसा कौनसा पाप मैंने किया था जिसका मुझे यह दंड दे रहा है। इन पापियों का क्या भरोसा? कभी कुछ का कुछ कर बैठें।"

वह फिर फूट फूट कर रोने लगी।

काफी बरसने के बाद धीरे २ उसकी आंखों से आंसू सूखने लगे। उसका आँसुओं का खजाना अब पूर्ण रूप से समाप्त हो गया। अब केवल हिचकियें ही शेष रह गईं।

उसने गीली आंखों से चारों ओर देखा।

...पाताल की चट्टानें उनसे बंधी लोहे की जंजीरें और मशाल की प्रज्वलित ज्वाला......

सामने उसे दिखी ज्वाला मानों वह उसके दुर्भाग्य पर अट्टहास कर रही है।

वह बेहोश हो गई।

"हां ! हतभागिनी, तेरा यहां कोई भी सहायक नहीं !"

परन्तु उसी समय उसके अन्तर से एक आवाज सी आई।

"कलावती ! दुनियां में कौन किसी का सहायक है। तेरी देह में वर्तमान आत्मा भी नहीं। फिर क्यों सहायक की आश लगाए हुए है ? अपने आप साहस बटोर कर आने वाली मुसीबतों से लोहा ले; जिससे तेरा परित्राण हो सकेगा, अन्यथा तेरा सत्यानाश सन्निकट है।"

इस आवाज को सुन कर कलावती की मरणासन्न देह में नई जान सी आ गई। आंखों में नया ओज, होठों पर स्निग्धता मुख पर कांति और ललाट पर वीरोचित तेज छा गया।

वह परिस्थितियों का सामना करने के लिए कटिबद्ध हो गई।

"...मरना है तो कायरों की मौत क्यों मरूं ?"

थोड़ी देर बाद में रणवीर वहाँ आ गया। उसके होठों पर मुस्कराहट की एक वक्र रेखा खिंची हुई थी।

उसने पूछा, "कहिए, कलावती जी ! आपका जी तो अच्छा है ?"

रणवीर के अचानक आगमन से कलावती की हिम्मत टूटने लगी।

पर क्षण भर पश्चात वह सम्भल गई; बोली कुछ नहीं।

"मैं पूछ रहा हूँ आपकी तबीयत कैसी है ?" रणवीर ने

सामने अपने असली रूप में प्रकट हो रहा था। केवल उसके होठ फड़क रहे थे उद्वेग मिश्रित क्रोध से।

"तुम्हें पता है!" वह फिर कहने लगी, "आज तुम जिस सामंतवाद का अविर्भाव करने जा रहे हो, वह कब्र में दफना दिया गया है। उसका पुनर्जीवित होना उतना ही असम्भव है, जितना कब्र के मुरदे का। अब वह सामन्तवाद बालू का ढ़हता हुआ महल है। जिसकी गिरती दीवारों को जो कोई सहारा देगा, वह स्वयं उसके नीचे दब कर खत्म हो जायेगा।"

"कलावती! बंद कर अपनी जबान, नहीं तो खींच लूंगा।" रणवीर जोर से चिल्लाया।

वह बुरी तरह हाँफ रहा था। उसके विवर्ण मुख पर स्वेद कण चमक रहे थे। उसकी घबराहट से ज्ञात होता था, उसका अन्तर स्वयं उसके विरुद्ध विद्रोह कर बैठा हो।

कलावती मुस्करा दी, जैसे उसे रणवीर पर दया सी आ गई हो।

उसने फिर रणवीर की ओर तिरछी नजर से देखते हुए कहा, "रणवीर! क्या तुम बता सकते हो कि तुम डाकू होकर अपने उस अभिष्ट लक्ष्य तक कुछ पहुँच सके हो?...शायद नहीं। तुमने केवल गाँवों कस्बों को लूट कर वहां की जनता पर आतंक जमाया है।...बनियों और महाजनों का धन अपहरण करके उनके दिलों में भय बैठा दिया है। तुम बनियों को

राध से मुक्त करो, रणवीर ! नहीं तो......!"

"कलावती ! मैं तेरी गर्दन तोड़ दूंगा अगर चुप न रही।" रणवीर गला फाड़ कर चिल्लाया और वह कलावती का गला दबाने के लिए लपका।

लेकिन कलावती के प्रशांत मुख की निर्मल मुस्कराहट ने उसका सारा गुस्सा ठंडा कर दिया।

उसकी आंखों से बरसने वाली दीप्ति से रणवीर कांप उठा और वह जल्दी से पैर बढता हुआ गुफा के बाहर हो गया।

(४)

रणवीर बड़ा उद्विग्न था। अस्थिर मस्तिष्क और संघर्ष-रत अंतर ने उसको पागल सा बना दिया। दरिया की लहरों के समान वह इधर उधर थपेड़े खा रहा था। शांति उससे कोसों दूर थी।

जब कलावती की मूर्ति उसकी आंखों में आ जाती थी तो वह क्षुभित हो जाता था।

"क्या कलावती का कथन सत्य है?" वह बार २ सोचता "...क्या वह स्वप्न द्रष्टा है? नहीं, कदापि नहीं। वह भी किसी आधार पर विद्रोही बना है। सरकार को क्या हक है हमारी जागीरें छीनने का? जागीरें हमारे बाप दादों ने सिर देके प्राप्त की है। उसके एक २ कण में आज भी हमारे पुरखों के रक्त का एक २ कतरा मिला हुआ है, जो उनकी पुनीत कीर्ति

उसने साथियों को वस में करने की कोशिश की। पर नतीजा उलटा निकला। वस्तुतः उसकी मोटी बुद्धि साथियों को अनुशासन में लाने के लिए असमर्थ थी।

उधर रणवीर की अवस्था विकृत होती चली जा रही थी। हृदय की व्यग्रता अपनी चरम सीमा पर थी। उसने अपना सारा संतुलन खो दिया। वह कभी बकता, कभी क्रोधावेश में पास पड़ी चीजों को तोड़ फोड़ देता कभी किसी को दुत्कार देता...

वह कलावती के पास भी नहीं गया। वह डरता था अन्दर ही अन्दर। पर क्यों ? वह खुद भी नहीं जानता।

एक दिन जी कड़ा करके उसने कलावती के पास जाने की ठानली।

"मैं उस गर्विनी का गर्व चूर २ करूँगा।"

हालांकि उसके दिल की धड़कन शुरु हो गई थी।

इतने में कलावती जिस गुफा में बंद थी उसमें से प्रताप-सिंह निकला। वह बिना इधर उधर देखे सीधा चला जा रहा था। रणवीर की आंखों में रक्त उतर आया। उसे यह शंका हुई कि प्रतापसिंह और कलावती उसकी उदासीनता से लाभ उठा कर उसके विरुद्ध कोई षड़यंत्र रच रहे हैं। बस फिर क्या था ? उसके सिर पर क्रोध का भूत सवार हो गया।

वह खूंखार सिंह के समान गर्ज उठा, "प्रतापसिंह ! तुम्हें शर्म नहीं आती। जिस पत्तल में खाते हो, उसी में छेद करने

घात करने के लिए उद्यत हैं। उसने बड़े ज़ोर से अपने सिर के बाल खींचे और फिर अपनी बन्धी मुठियां मेज़ पर पटकी।

ज्यों २ परेशानी बढती जाती थी, त्यों २ उसकी आंखों में कलावती की हँसती हुई तस्वीर नाचने लगती थी। उसके कानों में केवल स्वप्न द्रष्टा...स्वप्न द्रष्टा...सपनों की दुनियां में विचरण करने वाला...स्वप्न द्रष्टा...सुनाई पड़ता। वह खीझ उठता।

पलंग पर चित लेट गया। फ़िर भी शांति न मिली। वह सारे दिन अनेकानेक विचारों में उलझा रहा। वह जानता था, जिसने उसके दिल में आग लगाई है वह उसके यहां बंदी है। उसकी मौत उसकी एक उँगली के इशारे पर आ सकती है... पर . वह डरता है। उसके पास जाने की हिम्मत नहीं पड़ती; वह त्रस्त है अपने ही निर्वेद से। जो उसके लिए मृत्यु से भी घातक है।

रात हो गई। अंधेरी रात थी भयंकर। गीदड़ और उल्लुओं की त्रास पूर्ण आवाज रात्री की भयंकरता को चीरती हुई दशों दिशाओं में गूँज उठी। शेर और चीतों की दहाड़ कभी वनकी नीरवता को भंग कर देती थी।

रणवीर की आंखे नींद न आने से लाल हो गई। पर फिर भी असह्य परेशानियों ने उसके मस्तिष्क और हृदय में कोई समझौता नहीं होने दिया।

बड़ी मुश्किल से तीन चौथाई रात बीतने पर उसकी अचानक आंख लग गई ।

× × × ×

महाकाल........

विकराल आकृति...लम्बे २ दांत...लम्बे तीक्ष्ण खूनी नाखून.. काला स्याह कोयले से रंगा नंगा शरीर...और वह भयानक गर्जना करता हुआ हँस रहा था. जैसे सागर में ज्वार आ गया हो ।

रणधीर कांप उठा ।

भीषण अट्टहास से गुफा की चट्टानें गिरने लगीं। महाकाल के मुंह से नागिन की तरह बलखाती आग की लपटें निकलने लगीं ।

देखते ही देखते चारों ओर आग लग गई। सारी गुफा धधक धधक करके जल उठी। रणधीर के सारे साथी कीट-पतंगों की तरह जलने लगे ।

महाकाल हंस रहा था, सावन की दामिनी की तरह ।

रणधीर भयभीत हो [illegible] भागा, पर...जहां भी जाय महाकाल के विशाल बाहु उसे आबद्ध करने को तैयार थे। .....

महाकाल हंसा जोर से और उसने रणधीर को तिनके की तरह हाथ में उठा लिया...और उसे अपने अग्नि मुख में रखने के लिए . हाथ ऊंचा किया .

"नहीं ..नहीं...!" रणवीर चिल्लाया...

——रणवीर की नींद टूट गई। उसका हृदय जोर से धक् धक् कर रहा था। बदन पसीने में शराबोर हो गया था।

पर यह क्या ? उसके हाथों में हथकड़ियें थी। पुलिस इन्सपेक्टर कुशलपाल हाथ में पिस्तौल लिए खड़े थे। उसके अधिकांश साथी पुलिस सिपाहियों की हिरासत में थे।

और उसके पाताने खड़ा प्रतापसिंह मूछों पर हाथ फेर कर एक व्यंगात्मक हँसी हँस रहा था......

निर्वाक् रणवीर की आँखों में काली पीली छायाएँ नाचने लगी।

बेज़ुबाँ
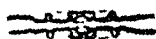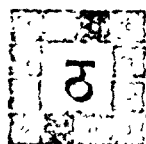
ठकुराइन की भृकुटी तनी हुई थी; वह गला फाड़ कर चिल्लाई "अरी ओ पूना! कहां मर गई। ज़रा इधर आना तो......!"

फिर वह स्वतः बड़बड़ाई, "......पता नहीं, सारे दिन क्या करती रहती है? केवल बच्चों को नहलाया है अब तक।"

पूना आ गई। उसके दाहिने हाथ और मुंह पर जूठन लगी हुई थी। पूना ने कातर स्वर में पूछा, "क्या है मलकाना?"

"...अरी! .. तू क्या कर रही थी?"

पूना कांपने लगी सूखे पीपल के पत्ते की तरह।

...आज शामत आ गई है। समझ में नहीं आता, कौन सी चूक हो गई है मुझ से?......वह अपने दिमाग पर ज़ोर दे कर विचारने लगी।

"अरी बोल तो सही...!" ठकुराइन चिल्लाई।

पूना पे जैसे चाबुक सी पड़ गई।

वह भय विह्वल मृग-शावक की तरह दयनीय हो गई।

दीन स्वर में बोली, " रोटी.. खा...रही.. थी।"

"क्यों री", —ठकुराइन ने पूना का कान पकड़ कर कहा "यहां रोटी खाने के लिए है या काम करने के लिए। कुंवर पदमजी के कपड़े कौन धोयेगा ?

पूना चुप रही।

एक बार नहला कर पदमजी के कपड़े उसने धो दिए थे। पर वे भी नटखट हैं एक नम्बर। अब फिर धूल में भर लिए होंगे।......

"अरी मुंह में क्या दही जम गया—बोलती क्यों नही ?" —और ठकुराइन ने उसका कान ऐंठ दिया।

पूना दर्द से चीख उठी।

"अरी राँड, तू तो चीखने का बहाना करती है। ठहर अभी तुझे मजा चखाती हूँ।"

इतना कह कर ठकुराइन ने तीन-चार थप्पड़ और घूंसे पूना के जड़ दिये। वह कसाई के बकरे की तरह निरुपाय हो कर बिलखने लगी।

पूना रोती रही काफी देर। उसकी हड्डी२ कसक रही थी। पूना को वहां कोई आँसू पोंछने वाला भी नहीं था। उस की तरह जो ठकुराइन की जन्मजात चेरियां थी, उनमें इतना

साहस नहीं था।

बचपन से लेकर अमानुषिक दास प्रथा की चक्की में पिसने वालियों में प्रतिकार की भावना कहां से आती ? इस लम्बी गुलामी ने उन्हें मानव से मिट्टी का पुतला बना दिया। आत्म हीनता की घनीभूत छाया उनके मुख पर सदैव छाई रहती थी। निरन्तर चहारदीवारी में तथा सिपाहियों के पहरे में घिरे रहने से इनका जीवन एक छोटी सी तलैया के जल की नाईं अवरुद्ध हो गया था।

दहेज में सामान के साथ मूक जानवरों की तरह दी जाने वाली ये बालायें अपनी साथिन को आते विलाप करते देख कर चुप हो रहीं। वे काम में ऐसे लगीं — जैसे कोई विशेष घटना घटित नहीं हुई है।

पूना सोच रही थी...पता नहीं पिछले जन्म में उसने ऐसे कौन से जघन्य पाप किये थे, जिनका उसे यह दण्ड मिल रहा है। सुबह से लेकर शाम तक वह केवल रोटी कपड़े पर काम करती रहती है। कोई यह भी नहीं कहता कि पूना थक गई है, तनिक विश्राम करले। उल्टे जब रोटी खाने बैठती है तो ठकुराइन उसको इस तरह तंग करती है। इस दुर्गति से तो मरना ही अच्छा है......

× × ×

आज जननी मौजी दे पर आदे पूना को चार दिन हो

गए। वह तो चली थी आत्मघात करने। परन्तु किस्मत उसे यहाँ खींच लाई। जब वह मरने जा रही थी तो उसे अपने पति की याद आ गई। वह ठाकुर साहब के साथ बाहर गया है। जाते समय कह रहा था, पूना ! मैं जल्दी आ जाऊंगा। परदेश से तुम्हारे लिए कोई अच्छी सी चीज लाऊँगा, जिसे पहन कर तुम रानी सी लगने लगोगी !

पर वह चिंता ग्रस्त थी। ठकुराइन के रनिवास से निकल भागना अपनी मौत को निमन्त्रण देना था।

"पता नहीं ठकुराइन ने मेरे इस तरह निकल आने से क्या कौतुक रचा होगा ?" वह मन ही मन बोली।

"अरी पूना बिटिया !" लाठी टेकती हुई मौसी घर में घुसी।

"क्या है मौसी ?" —पूना ने पूछा व्यग्र हो कर।

अपनी फूली सांस को रोक कर मौसी बोली "अरी सुना री तूने भी कुछ।"

पूना का भयातुर हृदय अशंकाओं से कांप उठा--"नहीं तो......।"

"अरी, उस नीच ठकुराइन ने बेचारे जमाई (पूना के पति) को जेल में डलवा दिया और तुझ पर चोरी का आरोप लगा कर तेरे नाम का वारंट कटवा दिया है।"

पूना के पांव तले की जमीन खिसक गई।

उसने कलेजा थाम कर कहा, "पर वे तो बाहर गये थे।"

"परसों ठाकुर साहब के साथ लौट आए हैं।"

"हे भगवान!" मौसी ठण्डी आह लेकर कहने लगी, "लोग कहते हैं कि अब कांग्रेस वालों का राज हो गया। राजा-प्रजा सब बराबर है और कोई किसी का तावेदार नहीं। सुना था-दहेज में कोई लड़की नहीं दी जाएगी। पर कल ही पदमपुर की ठकुराइन ने तीन लड़कियां अपनी बड़ी बाई के दहेज में दी हैं। क्या कांग्रेस वाले इन बातों को नहीं सुनते?"

उधर पूना कुछ और सोच रही थी।

"मैं अब क्या करूँ? ठकुराइन की ऐसी जालसाजी से निकल भागना बड़ी टेढ़ी खीर है। अगर सचमुच मुझे पुलिस पकड़ कर ले गई तो वे मेरी ऐसी दुर्गति बनायेंगे कि मैं मुँह दिखाने योग्य नहीं रहूंगी।" इसके मारे बदन में सिहरन सी दौड़ गई।

उसे अपने पति का ख्याल भी आया।

"…बेचारा! गाय की तरह भोला… हिरन की तरह मासूम… आज मेरी गलती से अकारण जेल में पड़ा है। दुष्ट पुलिस वालों ने उसे कैसी असह्य यातनाएँ दी होंगी!……

"उसने इस बार में मौसी से कहा,—"मौसी! मैं वापिस ससुराल जाऊँगी।"

"हैं……!"—मौसी ऐसी चौंक पड़ी, मानो किसी ने उसके

गर्म लोहा चिपका दिया हो।

"अरी तेरा सिर तो नहीं फिर गया। अगर वहां अब जायगी तो ठकुराइन तेरी खाल ही उधेड़ देगी।"

"चाहे कुछ भी हो। वहां गये बिना छुटकारा होना बड़ा कठिन है। अब मरना है इसी कुम्भीपाक की दहकती ज्वाला में कहीं भी त्राण पाना असम्भव है।"

पूना की आंखों की कोरें गीली हो गईं। मौसी का मुँह उतर गया। उसे आज उस बड़ी भारी गलती का अनिष्ट साकार रूप में दिखने लगा, जिसको पूना के बाप ने आज से पन्द्रह साल पहले की थी।

× × × ×

पूना रो रही थी।

जब वह रनवास वापिस आई तो ठकुराइन भूखी बाघिन की तरह उस पर झपटी।

जबरदस्ती उसके कपड़े उतरवाये गये और गुसलखाने में बन्द करके उसे खूब पीटा गया। आखिर वह ठकुराइन की जर खरीद दासी थी। जिस पर उसका वैसा ही हक़ था, जैसा एक खरीदे हुए कुत्ते पर होता है। बिल्कुल नंगी थी वह। और पीटने वाली उससे भी कहीं अधिक 'नंगी' थी। एक नारी के द्वारा 'नारीत्व' का अपमान था। एक शैतान के द्वारा मानवता के मुँह पर करारा तमाचा था।

हतभागिनी पूजा करती रही थी। "हे भगवान्! अगर तू दीनों का रक्षक है तो मेरी ओर क्यों नहीं देखता?...तू पाषाण मूर्त्ति में रहते २ कहीं पाषाण तो नहीं हो गया?..."

"...जब मैं सोने के पिंजरे में आई तो मैं बड़ी हर्षित हुई। निरुद्वेग भाव से मैंने अपने इस नये बन्दी जीवन को अंगीकार किया। मैंने सोने के पिंजरे की पीली २ सुनहरी सलाखों को ललचाई दृष्टि से देखा। सोने के कटोरे में पानी भरा था-और दूसरे में कुछ अनाज व फलों के टुकड़े पड़े थे।... मैंने अपने भाग्य को सराहा।...लेकिन वह खुशी चंद ही दिनों की थी। मैं वहां से कहीं जा नहीं सकती थी और न ही मस्ती से गुनगुना सकती थी। मुझे खलने लगा। सोने का पिंजरा मुझे काटने लगा। अब मुझे अपनी स्थिति का भान हुआ।... मैं एक कैदी दासी थी-आकाश में ऊँचा उड़ानें भर के किलोलें करने वाली चिड़िया नहीं रह गयी थी।......"

"... एक दिन ठाकुर साहब मदिरा की मस्ती में झूमते हुए आये और मुझे अकेली पाकर बोले,..."पूना ! आज तेरी मदमाती जवानी मेरे दिल में हलचल पैदा कर रही है। तेरे नाज देखकर हम तो बेकरार हुए जा रहे हैं। हिरनी सी बाँकी चितवन हृदय में गुदगुदी पैदा कर रही है। मेरे सपनों की रानी..." और उन्होंने मुझे अपने बाहुपाश में कस लिया।"

"मैं बेहद घबराई। अपने को मुक्त करने के लिए मैं सारी शक्ति लगाकर छटपटाई।.. पर बेकार.. । बाघ ने हिरनी को पंजों से बाँध दिया था। उसकी क्रूर क्षुधित लिप्सा ने मेरी धरोहर को एक ही झपटे में निगल लिया।

"..हे पिनाक पाणी ! उस समय भी आपकी समाधि भंग नहीं हुई ? मेरी आर्त पुकार सुनकर क्या आपका अखण्ड आसन हिल न उठा ? जो समाज ऐसे कुकर्मों का पोषक है, उससे आशा ही क्या की जा सकती है ? आज का नवयुवक आत्मसम्मान खोकर प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न है। फिर मुझ असहाय अबला बेजुवां की पुकार सुने भी तो कौन ?...अब इस खौलते नरककुंड से मैं ऊबगई......"

पूना अपने स्थान से उठी और दन् गुसलखाने की खिड़की की ओर चली। वह आक्रांत बेज़ुबां अबला खिड़की में से कूद पड़ी '' ।
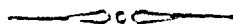
अभागिन

"क्या बताऊँ बहिन; कुछ कहते बनता नहीं···" एक लम्बी आह लेते हुए प्रीतम ने कहा।

'हाँ बहिन !' सामने बैठी हुई वृद्धा सिर हिला कर बोली, 'आज तुम्हारी ही नहीं, बल्कि भारत की हजारों ललनाओं की यही कहानी है। ऐसा मालूम होता है मानो इस दुनियाँ से इंसानियत ही उठ चुकी है।'

प्रीतम कुछ बोली नहीं।

वृद्धा, कमल के समान सुन्दर प्रीतम के मुख पर अपनी दृष्टि गड़ाते हुए कहने लगी, 'अब तो हिम्मत रखो, बहिन ! व्यर्थ में रोने-धोने से काम न चलेगा। तुम्हारे सम्बन्धियों का पाकिस्तानी गुण्डों ने 'खून' किया है, वह 'खून' तो किसी न किसी दिन रंग लायेगा और यह गुण्डाशाही······।' इतने में, पासमें सोता हुआ बालक अचानक चिल्ला उठा और माँ SSS··· माँ SSSकरके रोने लगा।

प्रीतम का ध्यान भंग हो गया।

खाक छान कर खाली हाथों लौट आए।

प्रीतम ने उनकी आँखें चुरा कर अपने आँसू पोंछे, फिर बोली, 'कहीं नौकरी मिली ?'

'नहीं...।'

'तो फिर कल से मैं जाऊँगी कहीं चौका बर्तन करने। बच्चे का रोना मुझसे सुना नहीं जाता।' कातर स्वर में प्रीतम ने कहा। सुन कर सुदर्शनलाल अवाक् से हो कर गृहिणी की और देखने लगे।

(२)

दूसरे दिन, प्रीतम को एक वकील साहब के घर पर चौका बर्तन करने की नौकरी मिल गई। वकील साहब बिल्कुल फक्कड़ थे, उनके आगे नाथ थी न पीछे पगहा। बड़ा भारी मकान था; लेकिन उसको शोभायमान करने वाली लक्ष्मी न थी। वकालत अच्छी चलती थी—खूब धन वैभव कमाया था; लेकिन उसको भी कोई भोगने वाला न था। वकील साहब प्रीतम को पाकर बड़े प्रसन्न हुए।

रात के आठ बजे चुके थे। परन्तु वकील साहब का अब तक भी पता नहीं था। उसका मकान सुनसान हो रहा था। उनकी प्रतीक्षा में प्रीतम रसोई घर में अन्यमनस्क सी बैठी थी। उसका जी अंदर ही अंदर काँप रहा था, किसी अज्ञात भय से। इसके अतिरिक्त पराये सूने घर में अकेले रहने का उसका यह

लिया और कामातुर लोचनों से देखते हुए बोले 'कहाँ जाती हो, बैठो...तनिक बैठो।' और वे ठठाकर हँस पड़े।

'छोड़ दीजिए मुझे, भगवान् के लिए। मुझ पर रहम कीजिए।' वह गिड़गिड़ाई।

'रहम...हा...हा...हा.. हा...।'

(३)

मस्तक में घनीभूत पीड़ा, आँखों में निराशाजनक वेदना, शरीर में असह्य कम्पन तथा आत्मा में ग्लानि लिए हुए प्रीतम अपने लड़खड़ाते पैरों को सम्हालती हुई अरुणोदय के निर्मल प्रकाश में चली जा रही थी अपने निवास स्थान को। वकील साहब के दुर्व्यवहार से उसको कटु अनुभव हुआ। उसे पूर्ण विश्वास हो गया था कि इस संसार में निर्बलों का कोई सहायक नहीं। संसार के मनुष्य तो उनकी निर्बलता का अनुचित लाभ उठाकर अपना उल्लू सीधा करना जानते हैं।

'पाकिस्तानियों के भीषण अमानुषिक अत्याचारों से पीड़ित होकर हम आये थे इस हमारे भाइयों के पवित्र देश में, लेकिन यहाँ भी पाकिस्तानी गुण्डों से भी बर्बर सत्यानाशी भेड़िये बैठे हैं। अब हम कहाँ जायँ ? किससे आसरा माँगे ?"

प्रीतम की चक्षुओं की कोरें गीली हो गईं।

किसी तरह वह अपने निवास-स्थान पर पहुँची।

पीपल के पेड़ के नीचे कई आदमी इकट्ठे हो रहे थे।

(४)

अस्पताल में सुदर्शनलाल की हालत अत्यन्त ही चिन्ताजनक थी। मोटर के नीचे आजाने से उनकी कई पसलियाँ टूट गई थी। रात भर से वे वेहोश पड़े थे, और अब भी होश में आने की कोई सूरत दिखाई नहीं देती थी।

प्रीतम ने जब उनकी यह हालत देखी तो सन्न सी रह गई। अपनी फूटी किस्मत को ठोककर वह फूट-फूटकर कर रोने लगी।

'परन्तु इलाज के लिए रुपये कहाँ से आएँ?' थोड़ी देर बाद वह आँसू पोंछकर सोचने लगी, "हमारा तो कोई यहाँ पर परिचित भी नहीं है, फिर किससे जाकर रुपये माँगू? कौन हमारी सहायता करेगा? 'वह वृद्धा' तो कुछ सहायता कर सकती है और है भी बड़ी सहृदय। लेकिन मैं तो उसका पता भी नहीं जानती, और वकील...पातकी...कहीं का...।"

घृणा से उसने नाक-भौं सिकोड़ लिया।

'लेकिन आज मेरे जीवन का दीपक बुझ रहा है, मेरी आशाओं की दुनियाँ उजड़ रही है, मेरे सोहाग को सदा हरी-भरी रहने वाली वाटिका पर तुषारापात हो रहा है। मैं वकील के पास जाऊँगी, उससे अनुनय-विनय करूँगी। वह कितना ही नराधम क्यों न हो! उसके भी शरीर में एक मानव का दिल है, शायद पसीज जाय मेरे टूटे हुए दिल की पुकार सुनकर।'

इतना सोचकर वह चल पड़ी वकील साहब के घर की ओर।

अस्पताल से निकल कर वह थोड़ी ही दूर गई थी कि पीछे से उसे किसी ने 'ज़रा ठहरना बहिन' की आवाज़ लगाई!

शीनम ठहर गई।

उसके पास एक बग्घी रुकी और उसमें से 'वह बुढ़ा' मुस्कराती हुई नीचे उतरी।

'क्षमा करना' बहिन! मैंने तुम्हें यूं ही आवाज़ दे दी थी।'

'नहीं, कोई बात नहीं...।' हँसने का निष्फल प्रयास करते हुए शीनम बोली।

'आज उदास कैसे दिखाई दे रही हो; बताओ न क्या बात है?' बुढ़ा ने पूछा।

'कुछ नहीं ऐसे ही।'

'मालूम पड़ता है, तुम मुझ से छिपाती हो।'

'..........।'

अन्न के दाने के लिए तरस रही थी, लेकिन मैं आज अपने कलेजे के टुकड़े के लिए तरस रही हूँ। और......।'

'हैं! क्या बच्चा ...?'

'...वह मर गया। और मेरे पति अस्पताल में पड़े अपने जीवन की आखिरी साँस ले रहे हैं। उनके इलाज के लिए रुपये चाहिए। रुपये मैं...!' आगे प्रीतम चुप रही।

'ठीक है। मैं सब समझ गई,' वृद्धा ने कहा, 'मेरे साथ चलो, मैं तुम्हारे लिए रुपयों का प्रबन्ध करूँगी।'

'सच, मैं तुम्हारा कभी भी एहसान नहीं भूलूँगी बहिन!'

प्रीतम ने वृद्धा की छाती पर श्रद्धा प्लावित होकर अपना, सिर रख दिया।

(५)

'झनन...झनन...झन् झनन...।'

'पिया गये परदेश, अब......।'

प्रीतम के कानों में 'ये' भनक पड़ी तो चौंक पड़ी। उसने चारों ओर अपने विस्फारित नेत्रों से देखा, उस वृद्धा के मकान को।

उसके पैर तले की जमीन खिसक गई।

इतने में उसे कई युवतियाँ निर्लज्जता पूर्वक हँसती हुई दिखाई दीं।

युवतियाँ प्रीतम के पास आई और उसके भोले मुख को देखकर खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

पचास और बीस

"यही एक मात्र अवलम्ब है हमारा या यों कहना चाहिए कि हमारे इस अकिंचन, नीरस और आपद्-ग्रस्त जीवन की संजीवनी बूटी है। अगर यह टूट जाय तो लुटिया डूबी ही समझो...।"—ललचाई दृष्टि से खजांची की ओर देखते हुए राकेश मन ही मन बोला।

आज वेतन मिलने का दिन था। सारे बाबू और चपरासी खजांची को चारों ओर से घेरे खड़े थे। खजांची बड़ी फुर्ती से नोट गिन रहा था। उसके हाथ मशीन की तरह चल रहे थे।

सारे बाबुओं के चेहरे खिले हुए थे. उसमें से केवल एकाध व्यक्ति ऐसे थे, जो आज भी मायूस मालूम पड़ते थे। वे कर्जदार थे। महाजन एक-दो चक्कर भी लगाकर चला गया था। सोच रहे थे, अगर हाथ से पैसे निकल गये तो फिर महीना भर कैसे निकालेंगे। बाकी सब मस्त थे। कुछ न कुछ सबको देना था। फिर भी वे बेपरवाह हँस रहे थे। आखिर पैसे देने के लिए ही तो मिलते हैं।

जब वह घर पर पहुँचा तो उसकी आँखें सावन-भादों की बदली के समान बरसने लगी। सारे घर में मुर्दनी सी छाई हुई थी। वातावरण में अवसाद भरा था। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह शमशान भूमि में खड़ा है। पहले जब वह छुट्टियों में आता था तो मां दरवाजे पर आँखें बिछाये उसकी राह देखा करती थी। पत्नी ऊपर छत पर चढ़कर अपनी दर्शनाभिलाषी आंखों से चमकती धूप में भी काफी दूर तक उसके स्टेशन से आते तांगे को अपलक देखा करती थी। छोटी बहिन पुलकित होकर गली में खड़ी रहती थी।

उसके गली में घुसते ही बहिन गले से झूम जाती थी।

"भैया आए···भैया आए···।"

उसकी पत्नी—सजला—आंखों में नीर भर कर उसकी छाती से चिपक जाती थी। काली घटा को उमड़ी देख कर मोर के समान उसका मन नाच उठता था।

"बड़े दिनों से आए आप...।" रुँधे गले से सजला कहती।

"बड़े दिन...। तुम भी बड़ी अजीब बात करती हो। तीन तो महीने हुए हैं गये।"

"आपको वे तीन महीने लगते हैं, पर मुझे तीन वर्ष। जरा मेरे दिल पर हाथ रख कर उससे पूछें तो सही कि उसने··।"

"आइये सेठजी।" उसने सेठजी का स्वागत किया।

"भई···मैं बैठने के लिए नहीं आया हूँ, बल्कि तुम्हें कुछ कहने आया हूं।"

"कहिए! क्या कहना है?"—

"तुम्हारे पिताजी के ऊपर हमारा दस हजार का कर्जा बाकी है। अब तुम्हीं उनके एक मात्र उत्तराधिकारी हो, सो··· इसलिए···।" सेठ जी बात बीच में ही चबा गये और वे उसके मुँह की ओर देखने लगे।

वह मानो गर्त में गिर पड़ा! उसे स्वप्न में भी ख्याल न था कि पिता जी उस पर इतना कर्ज का बोझ लाद गये हैं। उसने सारी बातें मां से कहीं।

मां ने आँखों में आँसू भरकर कहा "हाँ बेटा! तुम्हारे पिता जी ने सेठ जी से कर्ज लिया था। उनकी तनख्वाह अधिक तो थी नहीं जो घर का काम चला कर तुम्हें शहर पढ़ाने के लिए भेजते।"

"गोया, मुझे पढ़ाने के लिए ही इतना कर्ज लिया था···।"

"हाँ। उनकी बड़ी आकांक्षा थी कि तू अच्छा पढ़-लिख कर किसी ऊंचे पद पर काम करे। इसलिए वे कर्ज लेकर तुम्हें पढ़ाते रहे।"

"ओह···।"

और देखते ही देखते उसकी सारी जमीं-जायदाद बिक गई। वह कंगाल—बेघरबार हो गया।

करता रहा। करीब घंटे भर बाद में एक चपरासी उसे बुलाने आया।

वह अंदर चला गया।

मैनेजर को नमस्ते करके वह बैठ गया।

मैनेजर ने केवल गर्दन हिलाई। दलाल मुस्कराता हुआ चला गया उसके पास से।

उसे कुछ आसार अच्छे नजर आए।

"लीजिए, अपना अपाइंटमेंट फार्म, भर दीजिए। हमने आपको हमारी बैंक की सिटी ब्राँच में रख लिया है। मन्डे से ड्यूटी ज्वाइन करलें।" उसने फार्म ले लिया और भरने लगा।

फार्म भरने के बाद उसने कहा, "सैलेरी के कालम में मैं कितना भरूं?"

"लाइये! वे सब हम भर देंगे। हम अभी आपको पचास और बीस देंगे। फिर आपकी योग्यता के अनुसार स्पेशल इंक्रीमेंट भी मिल सकती है। नही तो सालाना चार रुपये इंक्रीमेंट मिलती रहेगी।"

'पर यह मेट्रिक का ग्रेड है और में हूँ ग्रेजुएट।"

"जी! यहाँ चाहे मैट्रिक आए या एम० ए०—सबको इतना ही स्टार्टिंग दिया जाता है। अलबत्ता आप बैंकिंग में कोई इम्तिहान पास होते तो फिर गौर करते।"

"पर..."।

फलदार पेड़

कड़ कड़ाती धूप भी रामू के कार्य में बाधक न थी। वह द्रुतगति से-बिना किसी रुकावट के अनवरत हँसिए से खेत में अनाज काट रहा था। हाथ छुल गये थे, आँखे पथरा गई थी, पेशानी पर पसीना चमक रहा था...फिर भी रुकना या पल भर के लिए सुस्ताना जैसे वह जानता ही न था। वह मानों जानता था, केवल हँसिया चलाना।...

न कोई आराम, न कोई क्षण भर के लिए दम लेना और न कोई सोच-विचार......

❀ ❀ ★ ❀ ❀

दो दिन से रामू के पेट में अन्न का एक दाना भी नहीं गया। क्योंकि उसको मजदूरी इतनी कम मिलती है कि जिस-से इस महँगाई में कुटुम्ब का एक समय का भोजन भी नहीं चलता। वह और उसका कुटुम्ब भूख की ज्वाला में जल रहा है। किससे जाकर अनाज माँगे ?...

अधिकाँश किसानों की ऐसी हालत है। उनमें से चंद मुट्ठी भर किसान ऐसे हैं, जिन्हें एक समय मुश्किल से पेट भर भोजन नसीब होता है......

रामू ने एक दीर्घ निःश्वास खींची।

❀ ❀ ❀ ❀

—चार साल पहले, जब रामू ने अपने स्वयं के खेत की जुताई की थी। भगवान् भरोसे, फसल भी अच्छी हो गई थी।

परन्तु खलिहान पर महाजन आधम के थे, जब गायटा किया जा रहा था।

आधा अनाज तो गांव के ठाकुर साहब चट कर गए, जो गांव की जमीनों के पुश्तैनी मालिक हैं। रामू था, ठाकुर साहब का कर्जदार। करीब पाँच साल पहले सौ रुपिये उधार लिए थे, अपनी लड़की की शादी में। वह रकम पाँच बरस में पंच-गुनी बन गई। फिर भी फ़सल से ब्याज और लगान को वह पूरा कर पाया।

और शेष आधा अनाज गाँव का गुजरू सेठ हड़प गया। उससे भी रामू ने दो-तीन साल पहले पचास रुपये एक बैल खरीदने के लिये लिए थे और कुछ अनाज बीज के वास्ते लिया था, जिसकी अदायगी इन बुरे सालों में नहीं हो रही थी।

बेचाराहत भागी रामू, अनाज को इस प्रकार लुटता देख

कर माथा पीट कर रोता रहा।

ठाकुर साहब ने दूसरे दिन अपने मर्जीदान भोला को रामू के पास भेजा। बुजुर्ग होने के नाते भोला का गांव के किसानों पर खूब अच्छा प्रभाव था।

वह लकड़ी टेकता हुआ रामू के द्वार पर पहुँचा। रामू अपनी फूटी किस्मत तथा दयनीय दशा पर आंसू बहा रहा था।

भोला मधुर स्वर में बोला, "अरे रामू! तुम तो व्यर्थ में चिंतातुर होते हो। जो कुछ भाग्य में लिखा था, मिल गया। भगवान पर भरोसा रखो।... महाजन तो अपना पैसा लेगा ही। जब हम उधार लाते हैं उससे तो खुशी से फूले नहीं समाते। तो फिर देते वक्त आँ ऊँ क्यों करें? तुम्हारा यह विलाप करना असंगत है।"

"पर, भाई!" कहा रामू ने कातर बन कर, "मैं बाल बच्चों का भरण-पोषण कैसे करूँगा? सौगंध खाकर कहता हूं कि घर में एक दाना नहीं—भूँजी भाँग भी नहीं और नहीं एक फूटी कौड़ी है। फिर तुम ही बताओ मैं कैसे गुजर करूँगा?"

"भगवान पर भरोसा करो, वही बेड़ा पार करेगा। यह समय तुम्हारी परीक्षा का है। अगर इसमें फिसल गए तो डूबे समझो।...तुमने सब कुछ दे दिया, परन्तु अपना धर्म और ईमान तो नहीं दिया। कोई यह तो नहीं कहेगा कि रामू बेई-

मानी करके महाजन का रुपया हजम कर गया। भगवान् के दरबार में तुम माथा ऊँचा करके चल सकोगे। समझे...।"

रामू की पीठ पर हाथ फेरकर कहने लगा, फिर भोला, "अरे भाई! हम किसान तो फलदार पेड़ हैं। जो समस्त दुःख यातनाएँ सहकर भी राहगीर को शीतलता प्रदान करते हैं। अच्छे २ फल देकर पोषण करते हैं। बदले में लेता है ...क्या?...कुछ नहीं। आँधी-अंधड़, सर्दी-गर्मी, पतझड़ वगैरह सब उसके जान के दुश्मन हैं। आँधी या अंधड़ उसको समूल नष्ट करने की कोशिश करता है। गर्मी उसको जलाकर भस्म कर देती है। पतझड़ उसकी हरियाली को छीनकर निरा ठूँठ सा बना देता है। लेकिन क्या वह कभी हतोत्साहित एवं निराश होता है? वह धैर्यवान सा बनकर एक पैर पर मस्तक ऊँचा किए खड़ा रहता है। फिर वसंत के आगमन पर वह फिर हरा-भरा फला-फूला हो जाता है और अपने मीठे फलों से, ठंडी छाँह से सेवा करता रहता है। यह संतोष और धैर्य का फल है। वह संकटों से घबरा कर अपनी भलमनसाहत और अच्छाई नहीं छोड़ता। समझा! अब चिंता मत कर। ठाकुर साहब ने कहा है कि अगर हाथ तंग है तो कोठार से अनाज ले जा सकता है।"

भोला के शब्दों ने रामू के निष्कपट दिल को मोह लिया।

उसके हृदय में प्रज्वलित विद्रोह की आग को एक बारगी दबा सा दिया।...

★ ★ ❀ ★ ★

—सूरज पश्चिम में काफी नीचे उतर गया था। दोपहर भी बहुत कुछ ढल चुका था।

रामू बड़ी तेजी से अनाज काटने लगा। क्योंकि उसे शाम तक आधा खेत काट कर रखना था। अगर इसमें जरा भी कसर रह गई तो ठाकुर साहब उसे दिन भर की मजदूरी भी नही देंगे और गालियाँ और झिड़क देंगे सो अलग।

भूख की वजह से उसका हाथ शिथिल पड़ रहा था। आँखों के आगे अँधेरा छा रहा था और पेट में तो मानों आग जल रही थी। फिर भी वह अपने थके-माँदे हाथों को फुर्ती से चलाने लगा।

जिस खेत को काट रहा था, वह उसका ही था। परन्तु ठाकुर साहब ने जबरदस्ती उस पर बकाया लगान निकाल कर अपने कब्जे में कर लिया।

उसे वे दिन याद आने लगे, जब वह इसमें हल चलाया करता था। जेठ आषाढ़ की चिल मिलाती धूप में भी प्रसन्न-मन रहता था। मलिनता का कहीं पता न था। दोनो लड़कियाँ ढेले तोड़ा करती थी और उसकी पत्नी सिर पर भाता और हाथ में छाछ की हाँडी लिए भरी दुपहरी में खेत आती थी। वह छाछ

में रोटियाँ चूरकर मगन हो कर खा लेता था। उस समय के आनन्द के सामने स्वर्ग का आनन्द भी फीका मालूम देता था। पर अब ..

...आज वह ठाकुर साहब का केवल चार आने का मज-दूर है।

ठाकुर साहब ने उसके बाप दादों के खेत को छीन लिया था, लेकिन वह कुछ न कर सका। करता भी क्या ? जिसकी लाठी, उसकी भैंस।...

...रामू जब जुताई करने निकला घर से, तो उसे सामने चार प्यादों सहित ठाकुर साहब द्वार पर ही मिले।

बैलों की रास खूँटे से बाँध कर वह खाट लेने दौड़ा। पल भर में वह आव-भगत करके ठाकुर साहब के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया।

"आज कैसे गरीब के घर पधारे, अन्नदाता।"

"रामू!" ठाकुर साहब बोले, "तुमने हमारा तीन-चार साल का लगान जमा नहीं किया है। इसलिए पहले उसे जमा कर दो, फिर खेत में हल चलाना।"

रामू को मानो काठ मार गया।

विनीत स्वर में कहने लगा, "पृथ्वी नाथ! लगान तो मैं हर साल जमा करवा देता हूँ। जरा आप पटवारी जी से पूछ ताछ करवालें।"

"रामू!" कड़क कर बोले ठाकुर साहब, "तुम मुझे निरा गधा ही समझते हो। मैं पटवारी जी से पूछ-ताछ कर तथा खाता बही देख कर आया हूं, समझा।,,

"अन्नदाता! मैं लगान दे चुका हूँ पटवारी जी को।" आद्र कण्ठ से कहा रामू ने।

"तुम्हारे पास रसीद आदि कुछ है?"

"नहीं। वे रसीद आदि कुछ काटते ही नहीं।"

"झूठा कहीं का। सब किसानों को तो वह रसीद काट कर देता है, पर तुझे नहीं, . हूँ...।"

"अन्नदाता! मैं......।"

"बस' मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। मुझे अभी लगान की रक़म चाहिए! "ठाकुर साहब ने आँखे निकाल कर कहा।

रामू गिड़गिड़ाया, "सरकार! मेरे घर में एक टका भी नहीं। कहाँ से आपको लगान चुकाऊँ? अनाज हुआ था, वह तो चुक चुका पहले ही। अब...मैं...।"

"तो फिर खेत में तुम हल नहीं चला सकते।"

ठाकुर साहब उठकर चलने लगे।

रामू ने दौड़ कर पैर पकड़ लिए, "दया करें गरीपरवर! दया करें। अगर जुताई नहीं करुँगा, तो खाऊँगा क्या? दूसरा कोई उद्यम नहीं।"

रामू रोने लगा।

"मैं कुछ नहीं जानता। मुझे रुपए चाहिए।"

की चौकीदारी करनी पड़ी थी। समझा। ठाकुर साहब राजा-साहब के भाई-बंद हैं। उनके यहाँ मजदूरी करने में कोई हरज नहीं।"

"लेकिन.. ।"

"लेकिन...वेकिन कुछ नहीं। बाल-बच्चों की ओर भी तो देखो। भूख से तड़पते तुम के दिन जी सकोगे।"

"...हूँ...।"

रामू कुछ बोला नहीं।

"अरे बोल तो सही; कुछ तो जवाब दे, भले आदमी! हाँ या ना...।"

"भइया! जब भगवान की यही मरजी है तो मैं उजर दावा करने वाला कौन होता हूँ।"

उस दिन से रामू ठाकुर साहब के यहाँ मजदूरी करने लगा।

× × × × ×

रामू ने एक लम्बी उसाँस ली और फिर चिलम भर कर पीने लगा।

खाली पेट को वह तम्बाकू के धुएँ से भर रहा था। अभी मजदूरी साँझ को मिलेगी। तब तक वह मन को इधर-उधर भटका कर रखना चाहता था। इसके लिए अतीत स्मृतियाँ अधिक लाभ प्रद होती हैं।

ठाकुर साहब पैसे बड़ी मुश्किल से देंगे। क्योंकि कल ही उसने एक रुपया अफीम लाने के लिए लिया था। अफीम के

बिना वह एक पल भी जीवित नहीं रह सकता। जब हाथ में उसकी पत्नी ने पैसे देखे, तो झगड़ा करने लगी कि घर में चार दिन से चूल्हा नहीं सुलगा और तुम्हें लगी है अफ़ीम लाने की। बेचारी बहुत रोई, गिड़गिड़ाई; पर वह जी कड़ा करके अफीम ले आया। वह खुद लाचार है। पक्का अफीमची होने की वजह से वह अफीम के बिना नहीं रह सकता।....

घर का खरचा ठीक से न चलने की वजह से वह फिर ठाकुर साहब का तथा गुजरु सेठ का कर्जदार होगया। बहुत चाहता है वह इस 'वेरी' से छुटकारा पाना, पर वह उसका गला भी नहीं छोड़ता। पता नहीं 'उसे' गरीबों से क्या मोह है?

वह अब बहुत कमजोर होगया है। हांथ-पैर जवाब देने पर तुले है। आँखों से ठीक से सूझता नहीं। अब चल-चलाव ा लग रहा है......

रामू ने चिलम का जोर से कश लिया और मुँह में से धुँएँ का गुब्बारा बाहर निकाल दिया। जैसे उसका कलेजा जल कर धुँआँ बन कर उड़ रहा है।

उसी समय, ठाकुर साहब ने पीछे मे आकर एक ऐसी लात मारी कि रामू औंधे मुँह गिर पड़ा, "हराम जादे! दिन भर से चिलम फूँक रहा है। काम एक टके का किया नहीं।" और ...।" ठाकुर साहब ने दाँत पीसे।

अपनी बरबादी, गाली-गलौच और अपमान सब कुछ रामू सहन कर गया। किंतु ठाकुर साहब की लात ने उसकी आत्मा पर एक करारी चोट की।

वह झटपट उठ बैठा और तमक कर बोला, "ठाकुर साहब मैं बहुत सहन कर चुका हूं अपना भला चाहते हो तो चले जाये, नहीं तो यहीं ढेर कर दूंगा।"

ठाकुर साहब यह सुनकर और भड़क उठे।

भला, गाँव के ठाकुर-राजा साहब के भाई-एक गाँव ...जत्र की ऐसी धृष्टता पूर्ण चुनौती को पी जाए !

...न्होंने लट्ठ का एक कस कर ऐसा वार किया कि रा... चारों खाने चित्त गिर पड़ा, "बदजात ! नमकहराम !! मुझे ... अकड़ दिखाता है।"

रामू के सिर से खून के परनाले बहने लगे। शरीर पह... ही कृश था। वह इस चोट को बर्दाश्त नहीं कर सका।

रामू गिर पड़ा सदा के लिए...

...और वह फलदार पेड़ अब सदा के लिए गिर पड़ा